

श्री बल्लभ स्मारक ग्रंथमाला-२ —

निगंठ नायपुत्र

श्रमण भगवान् महावीर

तथा

मांसाहार परिहार

श्री रामचंद्र मजानलाल जी
लेखक लक्ष्मी रामाधि माटे
ब्याटर लेट.

११-१०-१०-३५

स्मारक

पंडित हारालाल दूगड़ जेन

भाष्य

आगत-प्रभाकर-मुनि श्री पुण्यविजयजी

प्रकाशक :—

श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब
मुख्य कार्यालय—अम्बाला शहर (पंजाब)

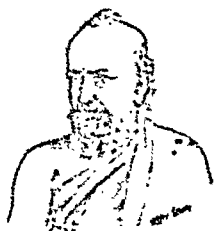
(सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित)

वीरनिर्वाण संवत् २४१०
प्रथमावृत्ति १०००

ईस्वी सन् १९६४
मूल्य—एक रुपया

मुद्रक :
शान्तिशाल जैन
श्री जैनेन्द्र प्रेम, बंगला रोड,
जवाहर नगर, दिल्ली-६ ।

श्री विष्णु सेवाय नमो रामे वंद्ये
 श्री श्री गुरुभ्यो नमो वंद्ये
 श्री विद्यपदम श्री, वृं०-३



जिन्होंने राष्ट्र के कठोर द्रवों का पालन करने हुए भी
 शोषण के दूत काम किये और अहिंसा के मूल तत्त्वों को
 मानव जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये सतत प्रयास किया,
 स अज्ञान-विमल-तरंगि कलियुगक कल्पवृक्ष श्री श्री १००८
 प० जेनाचार्य श्री विद्यपदम श्री सुदीक्षर को पवित्र स्मृति में

प्राक्कथन

कभी-कभी विद्वान् माने जाने वाले व्यक्ति भी कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर डालते हैं जो सत्य तथा औचित्य की दृष्टि से सर्वथा अग्राह्य होते हैं। ऐसे असत्य तथा अनुपयुक्त विचारों की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति का कारण चाहे कदाग्रह हो अथवा संबद्ध विषय की यथोचित जानकारी का अभाव, परन्तु ऐसे विचार विपैला प्रभाव डालते हैं और उनका निराकरण आवश्यक बन जाता है।

श्री घमानंद कौशात्रीजी ने अपनी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' में श्रमण-शिरोमणि, अहिंसा के अनन्य उपासक तथा प्रसारक, भगवान् महावीर पर रोगनिवृत्ति के लिए मांसभक्षण का आरोप लगाया है। सर्वप्रमुख जैनाग्रहों में गिने जाने वाले श्री भगवती मूत्र के एक मूत्र को उन्होंने आधार बनाया है।

भगवान् ने अपने एक मुनि शिष्य श्री निह को कहा कि "तुम मेंढिक नगर में सैठ गृहपति की भार्या रेवती के घर जाओ और उनसे 'मज्जार कडण कुकुडमण' (औषध रूप) ले आओ जो उन्होंने अपने लिए बना रखा है।" भगवन् वचन में प्रयुक्त इन शब्दों का 'बिल्ले द्वारा मारे गए मुर्गे का मांस' ऐसा अगगत और अमभाव्य अर्थ करके कौशात्रीजी ने अनर्थ किया है।

हर भाषा में अनेकार्थ शब्द रहते हैं। दो शब्दों से मिलकर बने हुए शब्दों का अर्थ भी बहुत बार उन दोनों शब्दों के अर्थों से सर्वथा भिन्न होता है। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में तो विशेषतया अनेकार्थता पाई जाती है। इसलिए विवेकशील विद्वान् जिनो भी ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ या उसकी व्याख्या करते हुए उस बात का ध्यान रखेंगा कि जिस व्यक्ति ने, किससे, किस समय, किस परिस्थिति में, किस निमित्त में, किस प्रसंग पर और किसके संबंध में वह शब्द कहे।

कानून (विधि Statute Law) में प्रयुक्त कानूनों का अर्थ तथा इनकी व्याख्या करने में प्रमत्त, प्रकरण और उद्देश्य धारिण का पूरा ध्यान रखना पारित्यक्त यह निर्देश सर्वोच्च न्यायालयों में प्रायः-प्रायः किया है। नैसायन के इस परिचित कृत्र की व्याख्या करने में उपर्युक्त सिद्धान्तों का कानूनी भी ध्यान लीमासीली ने इस दृष्टि से यह पूरा कृत्र अथवा विद्वान् अर्थ न करने।
देगित् :—

भगवान् मातापतिर—यस अतिमा के परमोपायक, शिनेके जीवन की कलायत नाय ही सर्वोपयोग अतिमा न सर्वभूषण् कला की;

श्री मित्र भूमि—संपूर्ण अतिमाके पत्र मातृयन के सावक विषय भ्रमण को शिनी भी प्राणी को मन-बचन-रक्षा मे बन्ध देना भी प्राय सम्भव है। शिनी मन्त्रिण समुह का प्रयोग भी नहीं करते,

नेकरी मेरानी—समन्वितमित्रा धारिणा सम को मातृयनों मे परमोपायक, सावक औपचारन मे सर्वोपयोग प्राप्त उपायक करने का भी,

विशोदेषमा मे प्रत्यय शीम—सर्वविध, विद्वान्, अतः पत्र परममित्रा शिनेके मित्र मूर्ते का नाम महा आभ्य और सर्वोपाय अणुभूषण,

प्रयुक्त नाय—समन्वित विद्वान् के मित्रिण् मूरयन और इनके प्रेमन की दृष्टि औपचार उपाय शीमों के मित्र मातृयन।

समाधि अर्थ प्रोत्साहनों मे विद्वान् करने पर समस्त है कि लीमासीली मे उपाय, प्रमत्तता की है।

कई विद्वानों मे इनके अपने इस मे लीमासीली को सावक की विद्वान् शिने करने का प्रयत्न किया है। पर भी लीमासीली पूरा मे पूरे मातृयनों के सावक मे भी इस विषय पर सावक मे अत्यन्त ध्यान रखना है और सभी अर्थ को ही दृष्टि मे सावक करने का प्रयत्न प्रयत्न किया है। कई विद्वानों मे इनके इस प्रयत्न-पत्र विद्वान्पुत्रे मेरा भी प्रयत्न है। इतिहास भी अत्यन्त ही प्रमत्तता मे इनके प्रयत्न का मे प्रमत्तता करने का विद्वान् शिने और शिने प्रोत्साहनों के मातृयन परमोपायक मे मातृयनपुत्रे प्रमत्तता किया। यह प्रमत्तता पर कई प्रमत्त शीमों को भी लीमासीली

की पुण्यभूमि में महासभा की ओर से पंडितजी को भेंट करने का मुझे श्रेय प्राप्त हुआ था और उनके इस ग्लान्य प्रयास की सराहना उन अवसर पर भी मैंने की थी ।

उनके लेख को पुस्तक रूप में विद्वानों के निष्पक्ष भाव ने अवलोकन के लिए भेंट करने और इस चर्चित विषय की बहुमुखी व्याख्या और विगदीकरण के इस अमूल्य प्रयास को उनके समक्ष रखने में महासभा हर्ष अनुभव करती है । हमें आशा है कि इसका अध्ययन करके सभी विवेकशील विद्वानों को संतुष्टि प्राप्त होगी ।

एम-१२८, कनाट सर्कस,
नई दिल्ली-१
दिनांक १०-५-६४

विनीत
ज्ञानदास जैन, ऐडवोकेट

आमुख

प्रस्तुत पुस्तिका में तीन अध्याय और ध्यानात्मक चर्च के आचार्य का—विशेष रूप से आध्यात्मिक आचार्य का—सूत्र वर्णन किया गया है, और इस आचार्य के साथ साथ, महिमा आदि के संभव का बोध दिया गया है, ये संवेदात्मक हैं—संवेदात्मक आचार्यन किया गया है। इस अध्यात्मिक आचार्य के प्रतिपाद्यक भावनात्मक महावीर की जीवन्तियों का महोत्सव के विचारण भी कर दिया है, का प्रमाणित कि—उन्होंने स्वयं अध्यात्म की प्रतिपाद्य करने जीवन में किम् प्रकाश की थी? यह ज्ञानवत्, स्वयं भाव्य और सूत्रपर भी अपने अध्यात्मिक आचार्य के अध्यात्म के और अध्यात्म के साधन में जटिलताय भी प्रेरणा भी भावनात्मक जीवन में ही करने। यह पुस्तक प्रकाशक भावनात्मक महावीर के आध्यात्मिक में साथ और अर्थ करने का किम् प्रकाश किया है और प्रार्थना की भी की पुस्तक होगी है—इसमें वर्णन में है। इसमें आध्यात्मिक के प्रार्थना के विषय अध्यात्मिक देकर यह किम् किया है कि स्वयं भावनात्मक महावीर में साथ आदि के संभव का किम् प्रकाश किया है।

अब सुझाव प्रकाश सामने है कि—यदि ध्यानात्मिक का है तो आध्यात्मिक का कुछ अध्यात्मिक के रूप में आध्यात्मिक साधनात्मक महोत्सव है। इनकी भावनात्मक महावीर के साथ अध्यात्मिक के साधनात्मक में किम् प्रकाश सामने है? आज में मुझे अध्यात्मिक चर्च में भी प्रार्थना की, प्रकाश जीवन्तियों के साधन का और आदि के आध्यात्मिक सुत्र में भी कई प्रेरणात्मक में इस और तीन विचारण का साधन विचारण है। यह प्रकाश करने प्रेरणात्मक यह साधना है जबकि आज में यह प्रेरणा है कि—जैसे आध्यात्मिक के साधनात्मक साधनात्मक है, और यह साधनात्मक है कि—यदि अध्यात्मिक साधनात्मक साधनात्मक का अध्यात्मिक का साधनात्मक साधनात्मक है, जहाँ में कर दे। यह साधनात्मक प्रेरणा है कि प्रेरणात्मक में भी की।

और अहिंसा के परम उपासक के जीवन में मांसाशन का मेल बैठ ही नहीं सकता है यह हमारी धारणा जैसे आज है वैसे प्राचीनकाल में भी थी। यह भी एक प्रश्न बारबार सामने आता है कि जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने मांस खाया यदि उसी प्रकार भगवान् महावीर ने भी खाया तथा जिस प्रकार आज बुद्ध के अनुयायी मांसाशन करते हैं उस प्रकार कभी-कभी जैन श्रमणों ने और गृहस्थों ने भी किया, तो अहिंसा के आचार में भगवान् महावीर और उनके अनुयायी की इतरजनों से क्या विशेषता रही ? ये और ऐसे अनेक प्रश्न अहिंसा में सम्पूर्ण निष्ठा रखने वालों के सामने आते हैं। अतएव उनका कालानुसारी समाधान जरूरी है। पूर्वाचार्यों ने तो उन-उन पाठों में उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ भी होता है ऐसा कहकर छुट्टी ले ली, किन्तु इससे पूरा समाधान किसी के मन में होता नहीं और प्रश्न बना ही रहता है। आधुनिक काल में जब त्याग की अपेक्षा भोग की ओर ही सहज झुकाव होता है, तब ऐसे पाठ मानव-मन को अहिंसा निष्ठा में विचलित कर दें और वह त्याग की अपेक्षा भोग का मार्ग ले; यह होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि में उन पाठों का पुनर्विचार होना जरूरी है, ऐसा समझकर लेखक ने जो यह प्रयत्न किया है वह सगहनीय और विचारणीय है।

लेखक ने विविध प्रमाण देकर भगवत्क प्रयत्न किया है कि—उन सभी पाठों में मांस का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अनेक कोप और शास्त्रों से यह सिद्ध किया है कि उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ किस प्रकार होता है। इसे पढ़कर अस्थिर चिन्तवालों की अहिंसा निष्ठा दृढ़ होगी—इसमें संदेह नहीं है, और आक्षेप करनेवालों के लिए भी नयी सामग्री उपस्थित की गई है, जो उनके विचार को बदल भी सकती है। इस दृष्टि से लेखक ने महत् पुण्य की कमाई की है और एतदर्थ हम सभी अहिंसा निष्ठा रखनेवालों के वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—मुनि पुण्यविजय

की सभाओं ने भी इस पुस्तक के विरोध में प्रस्ताव पास कर योग्य अधिकारियों को भेजे ।

इस आन्दोलन का परिणाम मात्र इतना ही हुआ कि "उक्त पुस्तक द्वारा न छपवाने का तथा इन प्रकाशित संस्करणों में मांस सम्बन्धी प्रकरण के साथ जैन विद्वानों के मान्य अर्थ को सूचित करनेवाला नोट लगवा देने का अकादमी ने स्वीकार किया परन्तु खेद का विषय यह है कि इस पुस्तक का ग्यारह भाषाओं में सर्वव्यापक प्रचार बराबर आज भी चालू है ।

भारत एक धर्म-प्रधान देश है, मात्र इतना ही नहीं, अपितु सत्य और अहिंसा की जन्म-भूमि है । इसी धर्म वसुधरा पर भारत की सर्वोच्च विभूति महान् अहिंसक, करुणा के प्रत्यक्ष अवतार, दीर्घ तपस्वी, महाश्रमण निर्ग्रन्थ तीर्थंकर (निग्गठ नायपुत्र) भगवान् महावीर स्वामी (जैनों के चौथीसवें तीर्थंकर) का जन्म हुआ । इसी पवित्र भारत भूमि में उन्होंने जगत् को सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा स्याद्वाद आदि नस्तिद्वान्तों को प्रदान किया । समस्त विश्व इस वान को स्वीकार करता है कि "श्रमण भगवान् वर्द्धमान महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ जैन श्रमण मनगा-वाचा-कर्मणा अहिंसा के प्रतिपालक थे और उनके अनुयायी श्रमण एवं श्रमणोपासक आज तक इसके प्रतिपालक हैं ।"

गंगा होने हुए भी ईस्वी सन् १८८४ में यानि आज से ८० वर्ष पहले जर्मन विद्वान् डाक्टर हर्मन जैसोवी ने जैनागम "आचारगम सूत्र" के अपने अनुवाद में सूत्रगत मांस आदि शब्दोंवाले उल्लेखों का जो अर्थ किया था उस पर विद्वानों ने पर्याप्त उदात्तता किया था । अनेक विद्वानों ने डाक्टर जैसोवी के मन्तव्यों के सट्टे सत्य पुस्तिकाएँ भी लिखी थीं जिनके परिणामस्वरूप डाक्टर जैसोवी को अपना मत परिवर्तन करना पड़ा । उन्होंने अपने १८-२-१९०८ ईस्वी के पत्र में अपनी भूल स्वीकार की । उस पत्र का उल्लेख 'स्मिटी अथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि जैनाज' पृष्ठ ११३-११८ में होनादाय सतिशब्दक कर्ता स्या ने इस प्रकार किया है :—

को संसार के समझ अयथार्थ रूप से प्रकट कर जो चर्चा उपस्थित की है उसका आज तक अन्त नहीं आया ।

यद्यपि अध्यापक कीशाम्बरी पाली भाषा तथा बौद्ध साहित्य के प्रखर विद्वान् माने जाते थे परन्तु अर्द्ध मागधी भाषा के तथा जैन आचार-विचार के पूर्णज्ञाना न होने के कारण एवं गोपालदाम भाई पटेल भी इन विषयों में अनभिज्ञ होने के कारण (दोनों ने) जैनागमों के कथित सूत्रपाठों का गलत अर्थ लगाकर निम्नोक्त नायपुत्र श्रमण भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ श्रमण मध पर प्राण्यंग मत्स्य मांसाहार का निर्मूल आक्षेप लगाया है । वास्तव में बात यह है कि जो भी कोई अहिंसा धर्म के अनन्य सम्स्थापक, प्रचारक, विध्वंसक, जगद्-वन्द्य, दीर्घ तपस्वी, महाश्रमण भगवान् महावीर पर मांसाहार का दोषारोपण करता है, वह भगवान् महावीर को यथायोग्य नहीं समझ सका, उनके वास्तविक पवित्र जीवन को नहीं समझ पाया । यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति ऐसा अप्रशस्त दुस्साहम कर ज्ञान-अज्ञान भाव में मांसाहार प्रचार का निर्मित बन जाते हैं । ऐसे निर्मूल आक्षेप का प्रतिवाद करना सत्य तथा अहिंसा के प्रेमियों के लिये अनिवार्य हो जाता है । इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए कई विद्वानों ने उन प्रतिवाद रूप कुछ लेख तथा पुस्तिकायें लिखकर प्रकाशित कीं ।

किर भी, त्रिजामुद्रों के लिये इस विषय में विशेष रूप से खोजपूर्ण लेख की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी । अतः भारत के अनेक स्थानों ने मित्रों तथा विद्यार्थी वन्दुओं ने अपने पत्रों द्वारा तथा माझान् रूप में मिलकर मुझे इस "भगवान् बौद्ध" के मांसाहार प्रकरण के प्रतिवाद रूप खोजपूर्ण, दार्शनिक पुस्तक, जैनशास्त्र-सम्मत तथा जैन आचार-विचार के अनुकूल निबन्ध लिखने की आपत्तभरी पुनः-पुनः प्रेरणायें की । उन निम्नतर की प्रेरणाओं ने मेरे मन में सृष्टि उच्छ्राओं को बल प्रदान किया ।

विशेष रूप में श्री रमेशचन्द्रजी दूगड जैन (पश्चिम पाकिस्तान में अपने हुए) कानपुर निवासी ने इस विषय पर कुछ नोट लिख भेजे और अन्ततः प्रकट की कि इस विषय पर एक सुन्दर निबन्ध संवार किया जावे

अतः वे अपने जीवन में किसी भी हालत में अपने लिये अपवाद मार्ग का आश्रय नहीं लेते । इसका आशय यह है कि वे अपने जीवन में हिंसा आदि जिममें हो ऐसा कोई कार्य नहीं करते । अतः प्राण्यंग मांसादि को ग्रहण करना उनके लिये असंभव ही है । इसलिये जैनों के पाँचवें आगम “भगवती सूत्र” के विवादास्पद सूत्रपाठ के शब्दों का प्राण्यंग मांसपरक अर्थ करना नितान्त अनुचित और गलत है तथा श्रमण भगवान् महावीर को जो रोग था जिनके लिये उन्होंने जिम औषध का सेवन किया था यदि वह प्राण्यंग मांस होता तो वह प्राणघातक सिद्ध होता । इसलिए उन्होंने वनस्पतियों से तैयार हुई औषधि का सेवन कर आरोग्य लाभ किया । वह औषध :—

“लवंग से संस्कारित विजोरा (जम्बीर) फल का पाक” औषध रूप में ग्रहण किया था । क्योंकि इस औषध में रक्त-पित्त आदि रोगों को दामन करने के पूर्ण गुण विद्यमान हैं ।

द्वेतावर जैनों द्वारा मान्य इस सूत्रपाठ का अर्थ वनस्पतिपरक औषध रूप में गुज्र दिगम्बर जैन विद्वानों ने भी स्वीकार किया है और इस औषध-दान की भृरि-भृरि प्रशंसा की है । मात्र उनका ही नहीं, अपितु यह भी स्वीकार किया है कि भगवान् को इस औषध दान देने के प्रभाव में स्वर्गीय श्राविका ने तीर्थंकर नाम-कर्म का उपाजर्जन किया, इसलिए औषध दान भी देना चाहिये । उगने स्पष्ट है कि गुज्र दिगम्बर जैन विद्वानों को भी उन औषध के वनस्पतिपरक अर्थ में कोई मतभेद नहीं है । देखो इसी निबन्ध का पृष्ठ ७८ ।

अधिक क्या कहें गलत तथा भ्रान्तिपूर्ण ऐसा अनुचित प्रचार कर अति प्राचीनकाल से चले आये जैन धर्म के पवित्र और सत्य सिद्धान्तों को तोड़-मोड़कर रखने में ऐसे पवित्र सिद्धान्तों में अज्ञान तथा द्वेषियों को मिथ्या प्रचार करने का मौका मिलता है । अतः कोई विद्वान् यदि किसी सत्यवस्तु का गिंकार ही भी गया है तो उसे इस बात को सत्य रूप में जानकर अपनी भूल के लिये प्रतिकार तथा पर्याप्तप करना ही उसकी सच्ची सिद्धता ही कर्मोटी है ।

समाज में संतोष नहीं हो सकता । तथा भाई गोपालदास जावाभाई अथवा जो कोई अन्य महानुभाव भी इसका अनुकरण कर रहे हों उनको भी वास्तविक अर्थ समझकर अपनी भूल को स्वीकार कर अपनी सरलता और सत्यप्रियता का परिचय देते हुए वास्तविक विद्वत्ता का परिचय देना चाहिये ।

भारत सरकार से भी हमारी प्रार्थना है कि जिस प्रकार Religious Leaders (धार्मिक नेता) नामक पुस्तक प्रकाशित होने पर अल्प-संख्यकों की भावनाओं का आदर करते हुए उसे ज्वत् कर तथा "सरिता" मासिक पत्रिका के जुलाई के अंक को ज्वत् करके सत्य परायणता का परिचय दिया है वैसे ही अध्यापक घर्मानन्द कोशाम्ब्री कृत "भगवान् बुद्ध" नामक पुस्तक के लिये भी कदम उठाये जिससे अहिंसा-प्रेमी जगत् के सामने शुद्ध न्याय का परिचय मिले ।

इस निबन्ध को लिखने में जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है उनकी सूची आगे दी है । उन सब ग्रंथकर्त्ताओं का साभार धन्यवाद ।

इस निबन्ध सम्बन्धी सब प्रकार की सम्मतियां एवं सूचनायें नीचे लिखे पते से भेजकर अनुग्रहीत करें ।

२/८२ रूपनगर,
दिल्ली-६

हीरालाल दूगड़
व्यवस्थापक, जैन प्राच्यग्रंथ भंडार

कृतज्ञता-प्रकाश

आजके परमांतकारी सुभ्रंश्वर श्रीनाथजी स्व० श्रीमद् विद्यावल्लभ
 श्रीसूर्यदेवजी के शैवलीक रामन के अवगत श्री आत्मवल्लभ श्री कात्मना
 प्रसाद प्राप्त रामन संवाद जैन श्री नर में एक स्वतंत्र संशुद्ध विद्या का कि
 सुभ्रंश्वर के विद्या की प्रति के विद्या श्रीसूर्यदेव रामन की स्थापना की आज ।
 हमारा के अनेक प्रसिद्धियों का आयोजन है—श्रीमद् श्रीमद् विद्यावल्लभ
 श्रीसूर्यदेव व श्रीमद् विद्यावल्लभ श्रीसूर्यदेव की बलात्मक प्रतिभाएँ, सुन्द-
 रविद्या रामन का सदा न रामन, सुभावालय, चन्द्र प्रकाशक, जोर-बाल,
 कायाका, अतिप्रभा ज्ञान ।

रामन की स्थापना विद्या में होगी । हम समय रामन के सभी का
 श्रीसूर्यदेव ही राम है । व० श्रीसूर्यदेवकी सुभ्रंश्वर का अवशिष्ट राम कर रहे
 है । रामन प्रकाशक की ओर भी राम रामन राम है । 'रामन कीश्वर' का
 प्रकाशन ही श्रुत है । रामन रामन सदा के रामनोस म 'रामन श्री
 राम' (विद्या व० रामन रामन राम व० श्री व० श्री) भी रामन ही
 श्रुत है ।

प्रभु श्रीसूर्यदेव राम न रामनही विद्या रामन विद्या राम व० श्री है ।
 विद्या श्री राम रामन विद्या श्री विद्याश्रुत व० श्रीसूर्यदेव राम राम-
 रामन रामनही श्री रामन में रामन श्रीसूर्यदेव की श्री रामन विद्या है ।
 श्री रामन है कि विद्या रामन रामन व० श्रीसूर्यदेव श्री रामन रामन श्री
 श्री रामन श्रीसूर्यदेव श्रीसूर्यदेव श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन
 श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन
 श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन
 श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन
 श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन श्री रामन

श्री श्री रामन

श्री श्री रामन

श्री श्री रामन

श्री श्री रामन

विषयानुक्रमिका

प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर

स्तम्भ	नं०	विषय	पृष्ठ
"	१—	जैन अहिंसा का प्रभाव	३
"	२—	जैन गृहस्थों का आचार	१३
"	३—	निर्ग्रन्थ श्रमण का आचार	२२
"	४—	भगवान् महावीर स्वामी का त्यागमय जीवन	२७
"	५—	श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्व ज्ञान	३२
"	६—	श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा	३५
"	७—	भगवान् महावीर के मामाहार सम्बन्धी विचार	४०
"	८—	जैन मामाहार ने गर्वथा अल्पिप्त	४८
"	९—	तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निर्ग्रन्थचर्या में मांसभक्षण निषेध	५७
"	१०—	बौद्ध-जैन संवाद में मामाहार निषेध	६२

द्वितीय खंड

निगूढ नादिपुत्र श्रमण भगवान् महावीर पर मामाहार के आक्षेप का निराकरण

स्तम्भ	नं०	विषय	पृष्ठ
"	११—	महा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मामाहार के आक्षेप का निराकरण	६९

स्तम्भ नं०	भाग	विभाग	विषय	पृष्ठ
" ११	"	"	३—वनस्पत्यंग मांसादि	१०९
" "	"	"	४—मांसादि शब्दों के अंग्रेजी कोशकारों के अर्थ	११२
" "	"	"	५—वर्तमान में माने जानेवाले प्राणी-वाच्य शब्दों के तथा मांस मत्स्यादि शब्दों के अनेक अर्थ	११२
" "	"	"	६—शब्द, जो प्राणवारी और वनस्पति दोनों के वाचक हैं	११५
" "	"	"	७—वर्तमानकाल में कुछ प्रचलित शब्द	११६
" "	"	"	८—श्रमण भगवान् महावीर और भक्ष्याभक्ष्य विचार	११७
" "	"	"	९—विवादास्पद सूत्रपाठ (विचारणीय मूलपाठ)	१२२
" "	"	"	१०—कवोय क्या था	१२३
" "	"	"	११—मज्जार कडए कुक्कुड- मंसए क्या था	१२७
" "	"	"	१२—विवादास्पद सूत्रपाठ का वास्तविक अर्थ	१४५

तृतीय खंड

उपसंहार

१४९

साधन ग्रन्थों की नामावली

१. अथर्ववेद माहिला
२. अथर्वशास्त्र (श्रीहृदय)
३. अथर्वशास्त्र विवरण (महोदय)
४. अथर्वशास्त्र संस्कृत
५. अथर्वशास्त्र
६. अथर्वशास्त्र भाष्य
७. अथर्वशास्त्र विवरण (महोदय)
८. अथर्वशास्त्र भाष्य भाग
९. अथर्ववेद माहिला
१०. अथर्वशास्त्र
११. अथर्वशास्त्र
१२. अथर्वशास्त्र
- अथर्वशास्त्र
१३. अथर्वशास्त्र विवरण भाग (महोदय)
१४. अथर्वशास्त्र भाष्य
१५. अथर्वशास्त्र भाष्य
१६. अथर्वशास्त्र भाष्य
१७. अथर्वशास्त्र भाष्य भाग
१८. अथर्वशास्त्र भाष्य भाग
१९. अथर्वशास्त्र भाष्य भाग
२०. अथर्वशास्त्र भाष्य भाग

२२. आगम अन्तकृतदशांग सूत्र
 २३. आगम प्रश्न व्याकरण सूत्र
 २४. आगम विपाक सूत्र
 २५. आगम प्रज्ञापना सूत्र
 २६. आगम कल्प सूत्र
 २७. आगम दशवैकालिक सूत्र
 २८. आगम उत्तराव्ययन सूत्र
 २९. आगम अनुयोगद्वार सूत्र
 ३०. जैन चरित माला (दिगम्बर)
 ३१. जैन सत्य प्रकाश (मासिक)
 ३२. तत्त्वार्थ सूत्र
 ३३. निरुक्तरत्न-प्रस्तावना (दिगम्बर)
 ३४. त्रिपण्डि शलाका पुरुष चरित्र (हेमचन्द्र)
 ३५. धर्म-विन्दु (हरिभद्र)
 ३६. धर्म-रत्न करंडक (वर्द्धमान सूरि)
 ३७. निघट्ट मग्नह (हेमचन्द्र)
 ३८. महावीर चरित्र प्राकृत (नेमिचन्द्र सूरि)
 ३९. महावीर चरित्र प्राकृत (गुणचन्द्र सूरि)
 ४०. योगयाम्त्र (हेमचन्द्र)
 ४१. श्राद्ध गुण विवरण
 ४२. पट० प्राकृ० (हेमचन्द्र)
 ४३. मंत्रोत्र प्रकरण
 ४४. मंत्रोत्र मन्त्रनिका
 ४५. जैन पत्र-पत्रिका
 निघट्ट कोश
 ४६. नानार्थ रत्नमाला
 ४७. निघट्ट (कर्मदेव)

४८. निघण्टु-भावप्रकाश
 ४९. निघण्टु-मदनमाल
 ५०. निघण्टु-रत्नाकर
 ५१. निघण्टु-राज
 ५२. निघण्टु-राजवल्लभ
 ५३. निघण्टु वैद्यक उर्दू भाषा में (कृष्ण दयाल)
 ५४. निघण्टु मार्तण्डियाम
 ५५. निघण्टु मेघ
 ५६. निघण्टु भाष्य (आचार्य वास्तु)
 ५७. पाक श्रवण
 षोडश साहित्य
 ५८. अमृतनिरुपाय
 ५९. लट्ट कवच
 ६०. पान्थनाथ का चतुर्विंशति धर्म (धर्मोत्तम कौशाबी)
 ६१. शर्मा
 ६२. शोडश-शतक (सद्गुरु महाराज्ययन)
 ६३. भक्तियोग श्रवण (धर्मोत्तम कौशाबी)
 ६४. शक्तिनिरुपाय
 ६५. शक्तिनिरुपाय
 अन्य ग्रंथ
 ६६. धर्मोत्तम
 ६७. धर्मोत्तम-शक्तिनिरुपाय (धर्मोत्तम)
 ६८. धर्मोत्तम-शक्तिनिरुपाय
 ६९. धर्मोत्तम
 ७०. धर्मोत्तम शक्तिनिरुपाय
 ७१. धर्मोत्तम

७२. हिन्दी विश्वकोश
 ७३. ऐतरेय ब्राह्मण
 ७४. पत्र-पत्रिकाएं

ENGLISH BOOKS

75. Sanskrit English Dictionary (Apte)
 76. English Dictionary (J. Ogilvie)
 77. Sanskrit English Dictionary (Monier Monier-Williams)
 78. A. S. B 1868 N/85
 79. Mr. Gate report
 80. Hinduism (Prof. D. C. Sharma)

उद्धरण

१. डा० राधा विनोद पाल
 २. मि. सरमली
 ३. महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी
 ४. मि. एच कूप लेंड
 ५. मि. वेगलर
 ६. कर्नल टैलटन
 ७. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक
 ८. अल्ल्याड़ी कृष्णा स्वामी अय्यर
 ९. डा. हर्मन त्रेतोवी
 १०. डा. स्टैन कोनो

प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निर्णय ज्ञातपुत्र
श्रमण भगवान् महावीर

जैन अहिंसा का प्रभाव

जैन अहिंसा के बारे में जौन नहीं जानता ? जैन धर्म के प्रत्येक आचार-विचार की कसौटी अहिंसा ही है। जैन धर्म की एसी विमोक्षता के कारण विश्व का अन्य कोई भी धर्म इस की समानता नहीं कर सकता। आज भी जैनों के अहिंसा, संयम, तप का पाठन तथा नदिरा-मांसादि का त्याग गारे संसार में प्रसिद्ध है। इनो लिये यह धर्म "दया-धर्म" के नाम से आज भी उद्भवित्वात् है। इसकी अधीनिक अहिंसा को देखकर आज के विद्वान् विद्वान् संत-गुरु हो जाते हैं। डा० राधा विनोद पाण्ड Ex-judge, International Tribunal for trying the Japanese War Criminals, ने अपने अतिमात्र में कहा है कि—

If any body has any right to receive and welcome the delegates to any Pacifists' Conference, it is the Jain Community. The principle of Ahimsa, which alone can secure World Peace, has indeed been the special contribution to the cause of human development by the Jain Tirthankaras, and who else would have the right to talk of World Peace than the followers of the great Sage Lord Parthvanath and Lord Mahavira ?

—(Dr. Radha Vinod Paul)

सारांश—विश्वमैत्री संघर्षरत महा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जैनों को ही है। क्योंकि अहिंसा ही विश्वमैत्री का सारभूत संधा बन सकती है और ऐसी अयोग्य अहिंसा को भेद करके ही जैन धर्म के प्रत्येक संत-गुरु ने ही की है। इस लिये

विश्वशांति की आवाज़ प्रभु श्री पार्श्वनाथ और प्रभु श्री महावीर के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरा कौन कर सकता है ?

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी लिखते हैं कि "महावीर स्वामी का नाम किन्नी भी निदान्त के लिये यदि पूजा जाता है तो वह अहिंसा ही है। प्रत्येक धर्म की महत्ता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्त्व कितने प्रमाण में है। और इस तत्त्व को यदि किसी ने अधिक-से-अधिक विकसित किया है तो वह भगवान् महावीर ही थे।"

भगवान् महावीर हो अथवा कोई भी जैन तीर्थंकर हो, न तो वे स्वयं ही मदिरा -मांसादि का प्रयोग करते हैं और न ही उनके अनुयायी यहाँ तक कि जैन धर्म पर विश्वास रखने वाले गृहस्थ भी, जो किसी तरह का व्रत-नियम या प्रतिज्ञा को ग्रहण नहीं करते अर्थात् श्रावक के व्रतों को भी ग्रहण नहीं करते, मांस-मदिरादि अभक्ष्य पदार्थों से हमेशा दूर रहते आ रहे हैं। भगवान् महावीर आदि जैन तीर्थंकरों के मांसाहार निरोध का सविशेष परिचायक सूत्र (प्रमाण) इससे अधिक क्या हो सकता है।^१

निर्ग्रय श्रमण-जैन माधु तो छः काया के जीवों की हिंसा से बचते हैं। वे प्रमकाय के जीवों का आरंभ (हिंसा) नहीं करते, सचित फल, फूल, सब्जी आदि का भक्षण नहीं करते। अग्निकाय का आरम्भ नहीं करते। सचित जल का उपयोग नहीं करते। बैठना या गड़े होना हो तो रजोहरण (ऊनादि नरम वस्तु का एक गुच्छा, जिगमे स्थान साफ करने पर जीवादि की हिंसा का बचाव होना है) में स्थानादि का प्रमाजंन (साफ़-सूफ़) करके बैठने, उठने, चलने, मोते हैं, ताकि किमी सूक्ष्म जीव की भी हिंसा न हो जाये। पृथ्वी को न मच्यं मोदने हैं न दूगरों में गुदवाते हैं। वायुकाय (वायु के जीवों) की हिंसा से बचने के लिए न सा चलाते हैं, न

१. भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रय श्रमण एवं श्रमणोपासकों के आचार सम्बन्धी विज्ञाप स्पष्टीकरण अगले स्तम्भों में करेंगे।

दूसरों ने चले जाते हैं। रात्रि-भोजन भी नहीं करते, क्योंकि हममें प्रायः उस जीवों की हिंसा होनी है तथा भोजन के साथ उस जीवों के पेट में चले जाने से मानवक्षण का दोष भी संभव है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्त जैन तीर्थंकरों—मगवान् महावीर आदि—ने अपने अनुयायी जैन मुनियों के लिये स्कूल में लेकर मूधम हिंसा से बचने के लिये नया अहिंसापालन के प्रति कितना जागरूक रहने का आदेश दिया है। जिसके फलस्वरूप आज तक जैन साधु-भाष्यी संघ स्कूल में लेकर मूधम-से-मूधम अहिंसा का पालन करने में तथा जागरूक बना आ रहा है। यह बात आज भी संगार प्रसन्न देखा रहा है।

प्राणी मात्र के रहस्य सर्वज्ञ भगवान् महावीर जीव का स्वस्व जानते थे। उन्होंने बतलाया कि मानव जब तक अपनी मूधम अहिंसा का पालन नहीं करता तब तक वह निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति में समर्थ नहीं हो सकता। शाश्वत सुख प्राप्त करने का अहिंसा के पूर्ण पालन को छोड़कर अन्य साधन ही ही नहीं सकता। इसी वजह से पौनराज-सर्वज्ञ भगवान् महावीर द्वारा वाचिष्ठ आत्मों का प्रधान विषय अहिंसा ही है। जो धर्मनिरपेक्ष तीर्थंकर नहीं तक मूधम ही से जीवों की हिंसा से स्वयं बचते हैं और दूसरों के लिये बचने का विधान करते हैं उन पर मानव-मरण का आरोप लगाया नहीं तक उचित है? इनके लिये मुझ सचक स्वयं विचार कर सकते हैं।

अहिंसा के विषय में परमपूज्य संत संत भगवान् महावीर ने यह स्वयं कहा था है :—

“सत्ये पान्ता विद्याज्या, मुहसाया दुहसद्विहसा,
 क्षिपयवहा विषयीविषो जोविज्जामा पातिषाएरुद संधनं”

(आचार्यि धृ० १ अ० २ उ० २)

अर्थात्—सत्य प्राणियों को आधुन्य विष है, सब मृत्यु के अभिषेक है, दुःख मृत्यु को अविहसा है, जो सबको अहित है, जो सब मर्त्यों को विष है, सभी जीवों की हिंसा करने है, स लिये जितने भी मारता या हानि देता सभी धारिते ।

जो "सराक" के नाम से प्रसिद्ध है। सराक शब्द "सरावक-श्रावक" का अपभ्रंश होकर बना है। ये लोग कृषि, कपड़ा बुनने तथा दुकानदारी आदि का व्यवसाय करते हैं। ये लोग उन प्राचीन जैन श्रावकों के वंशज हैं जो जैन जाति के अवशेष रूप हैं। यह जाति आज प्रायः हिन्दू धर्म की अनुयायी हो गई है। कहीं-कहीं अभी तक ये लोग अपने आपको जैन समझते हैं। इस जाति के विषय में अनेक पाश्चात्य तथा पौराणिक विद्वानों ने उल्लेख किया है। जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. मि० गेट अपनी सेंसर्स रिपोर्ट में लिखते हैं कि :—

इस बंगाल देश में एक खास तरह के लोग रहते हैं। जिनको 'सराक' कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। "ये लोग मूल से जैन थे", तथा इन्हीं की दंतकथाओं एवं इनके पड़ीसी भूमिजों की दंतकथाओं से मालूम होता है कि—ये एक ऐसी जाति की सन्तान हैं जो भूमिजों के आने के समय से भी पहले बहुत प्राचीन काल से यहाँ बसी हुई है। इनके बड़ों ने पार, छर्वा, बोरा और भूमिजों आदि जातियों के पहले अनेक स्थानों पर मंदिर बनवाये थे। यह अब भी सदा से ही एक शान्तिमयी जाति है जो भूमिजों के साथ बहुत मेल-जोल में रहती है। कर्नल डैलटन के मतानुसार ये जैन हैं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी (Sixth Century B. C.) से ये लोग यहाँ आवासे हैं।

यह शब्द "सराक" निःसन्देह "श्रावक" से ही निकला है, जिस का अर्थ संस्कृत में 'बुनने वाला' होता है। जैनों में यह शब्द गृहस्थों के लिये आता है जो लौकिक व्यवसाय करते हैं और जो यति या साधु से भिन्न हैं।

(मि० गेट सेंसर्स रिपोर्ट)

१. जैनागमों में श्रावक शब्द गृहस्थ व्रतधारी जैनों के लिये आया है, परन्तु बौद्धों ने श्रावक शब्द बौद्ध शिक्षुओं के लिये प्रयोग किया है। 'सराक' जो कि श्रावक शब्द का अपभ्रंश है वह गृहस्थों की जाति के लिये प्रसिद्ध है। इसलिये यह जाति जैन गृहस्थ-श्रमणोपासकों का अवशेष रूप है इसमें सन्देह नहीं है।

६. सि० सरकारी कहते हैं कि—

मदरसि मागसुम के 'मराठ' अर्थ सिद्ध हैं, परन्तु के अन्तर्गत जो वाक्योक्त
वाक्य में जैज हीनो की बात की जाती है। वे पहले मराठागणों हैं, माग
हत्या ही नहीं परन्तु 'मराठो' के अर्थ को भी वे मराठानों में नहीं करते।

७. सि० एरहूय गेड का मत है कि—

'मराठ' शब्द सिद्ध में पुराना नहीं है। सिद्धों के अर्थ में अन्तर्गत
मागसुम हैं। मराठोय सिद्धों में अन्तर्गत नहीं करते। पुराने अर्थ में ही नहीं करते
मराठी को भी नहीं करते। भी मराठोय (मराठी के अन्तर्गत मराठोय)
की पुराने ही नहीं करते अन्तर्गत मराठोय मागसुम हैं। इन्हें मराठोयकारों की
मराठोय की मराठोय मराठोयकारों में नहीं करते। इनमें मराठोयकारों
भी नहीं करते—

"कोर हुमा (गुण) मराठी मराठी ए मराठी मराठी मराठोय मराठी।"

४. A. S. B. 1866 N. 85 में सिद्ध है कि—

They are represented as having great temples and
taking life. They must not say till they have seen the man.
(अन्तर्गत मराठी) and their mraṭhōyā mraṭhōyā

अर्थ—मराठी (मराठ) मराठी मराठी के अन्तर्गत हैं, जो मराठोय
मराठी में अन्तर्गत पुराने करते हैं और के अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी
मराठी मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी के पुराने हैं।

५. सि० सेरमण्ड व कर्णाल सेरमण्ड का मत है कि—

मराठोय के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत
मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी
मराठी के अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी

६. इन्हें मराठी मराठी का अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत
मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी
मराठी के अन्तर्गत मराठी के अन्तर्गत मराठी मराठी के अन्तर्गत मराठी

(६) यह बात बड़े गौरव की है कि जिस जाति को जैन धर्म भूले हुए आज तेरह सौ वर्ष हो गये हैं उनके वंशज आज तक बंगाल जैसे मांसाहारी देश में रहते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं। इस जाति में मत्स्य तथा माग का व्यवहार सर्वथा वर्ज्य है। यहाँ तक कि बालक भी मत्स्य या मांस नहीं खाते। मांसाहारी और हिंसकों के मध्य में रहते हुए भी ये लोग पूर्ण अहिंसाक तथा निरामिषभोजी हैं।

७. फर्नल डेलटन का मत है कि:—

इस जाति को यह अभिमान है कि इस में कोई भी व्यक्ति किसी फौजदारी अपराध में दंडित नहीं हुआ। और अब भी संभव है कि इन्हें यही अभिमान है कि इस ब्रिटिश राज्य में भी किसी को अब तक कोई फौजदारी अपराध पर दंड नहीं मिला। ये वास्तव में शांत और नियम से चलने वाले हैं। अपने आप और पड़ोसियों के नाथ जाति से रहते हैं। ये लोग बहुत प्रतिष्ठित तथा वृद्धिमान मालूम होते हैं।

(८) अनेकों जैन मन्दिर और जैन तीर्थकरों, गणधरों, निर्घणों, श्रावक, श्राविकाओं की मूर्तियाँ आज भी इस देश में सर्वत्र दधर-उधर बिखरी पड़ी हैं, जो कि "मराक" लोगों के द्वारा निर्मित तथा प्रतिष्ठित कराई गयी हैं। (A. S. B. 1868)

सारांश यह है कि हजारों वर्षों से आने मूल धर्म (जैन धर्म) को मूल करने पर भी और अन्य मांसाहारी धर्म-संप्रदायों में मिल जाने के बाद भी इस सभ्यता में जैन धर्म के आचार, सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ आज भी निरन्तर हैं।

इस सभ्यता के यह बात स्पष्ट है कि जैन धर्म निर्माता जिनके अत्यन्त उदारमत, सदाईत आदि तीर्थकरों ने अहिंसा का लक्षण अर्थात् कि अपने अपने आचरण में कदापि हिंस के लोगों को इस सभ्यता के अन्तर्गत रखा, जिनके परिणाम स्वरूप जिनोंने इस सभ्यता को अहिंसा के लक्षण के साथ (सदा-अहिंसा, श्रावक-श्राविका)

चारित्र के अभाव में सर्व कर्मजन्य उपाधि से मुक्ति रूप निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति कदापि नहीं कर सकता ।

जैन धर्मोपासकों (गृहस्थों), जैन धर्म के प्रचारक निर्ग्रंथों (साधुओं) तथा जैनधर्मनिर्यामक तीर्थंकरों का आचार कितना पवित्र था और है इस का संक्षिप्त विवेचन करना इस लिये यहाँ आवश्यक है कि आप देखेंगे—ऐसे चरित्र वाला कोई भी व्यक्ति प्राण्यंग मत्स्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि भक्षण नहीं कर सकता ।

जेन गृहस्थों (श्रावक-श्राविकाओं) का अचार

जेन गृहस्थों में मुख्य दो प्रकार का मत सर्वोत्तम माना जाता है।

(क) गृहस्थ कर्म की पूर्ण भूमिका

संप्रविश्रावण—सर्वोत्तम मतानुसार जो एक घरेलू-गृहस्थ की श्रावण कर्म की पूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए अचार बनाया गया है उसे ही सर्वोत्तम माना जाता है। सर्वोत्तम मत के अचार कर्मों का ही अर्थ है।

जेन गुरु कर्म श्रावणों में विचार्यते हैं—

१. ध्याय, २. ध्यायी, ३. भावक, ४. भाविका ।

इसमें भावक-भाविनी का अन्वय अन्वयक-अन्वयिका ही है, और भावक-भाविका का अन्वय गुरु ही है।

ध्याय (संगत-ध्यायी) के अन्वय वह गुरु ही माना जाता है, जो कि वह भावक-भाविनी के अन्वय का अन्वयक है, अर्थात् भावक-भाविका का भी अन्वय भावक ही अन्वयक माना जाता है। भावक का अन्वय भाविनी के अन्वय ही माना जाता है। इसी के अन्वय ध्याय के अन्वय का अन्वय भावक भाविनी ही है।

भावक गुरु का अन्वयार्थ—

जेन कर्मों में ही ध्यायियों के अन्वय अन्वयक अन्वयिका अन्वयिका ही माना जाता है और भावक-भाविनी का अन्वय अन्वयक अन्वयिका ही ध्याय अन्वयिका ही है। इसी अन्वय अन्वयक अन्वयिका ही ध्याय अन्वयिका ही है। अन्वय अन्वयिका ही ध्याय अन्वयिका ही है। अन्वय अन्वयिका ही ध्याय अन्वयिका ही है। अन्वय अन्वयिका ही ध्याय अन्वयिका ही है।

जैन परम्परा के अनुसार श्रावक-श्राविका बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित सात दुर्व्यसनों का त्याग करना आवश्यक है :-

१. जुआ खेलना, २. मांसाहार, ३. मदिरापान, ४. वेश्यागमन, ५. शिकार, ६. चोरी, ७. परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन । ये सात दुर्व्यसन^१ हैं ।

ये सातों ही दुर्व्यसन जीवन को अवःपतन की ओर ले जाते हैं ।^२ इनमें से किसी भी एक व्यसन में फंसा हुआ अभागा मनुष्य प्रायः सभी व्यसनों का शिकार बन जाता है ।

इन मान व्यसनों में से नियम पूर्वक किसी भी व्यसन का सेवन न करने वाले ही श्रावक-श्राविका बनने के पात्र होते हैं ।

(स) श्रावक बनने के लिये:—

उपर्युक्त मान व्यसनों के त्याग के अतिरिक्त गृहस्थ में अन्य गुण भी होने चाहिये । जैन परिभाषा में उन्हें मागनिुसारी गुण कहते हैं । इन गुणों में से कुछ ये हैं:—

नीति पूर्वक धर्मोपासन करे, शिष्टाचार का प्रशंसक हो, गुणवान् पुरुषों का आदर करे, मधुरभाषी हो, लज्जाशील हो, शीलवान हो, माता-पिता का भक्त एवं सेवक हो, धर्मविरुद्ध, देशविरुद्ध—एवं कुलविरुद्ध कार्य न करने वाला हो, आय में अधिक व्यय न करनेवाला हो, प्रतिदिन धर्मोपासन सुनने वाला हो, देव-गु (जिनेन्द्र प्रभु तथा निर्देय गु) की भक्ति करने वाला हो, नियत समय पर परिमित मात्रिक भोजन करने वाला, अर्थात् दूर्जन-हीन जनों का ए गाय-धर्तों का यथाधिक मत्कार करने

२. सत्याणुव्रत, ३. अन्नौर्याणुव्रत, ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५. परिग्रह-परिमाण अणुव्रत ।

तीन गुणव्रत—६. दिग्ब्रत, ७. भोगोपभोगपरिमाण व्रत, ८. अनर्थदण्डत्याग व्रत ।

चार शिक्षाव्रत—९. सामायिक व्रत, १०. देशावकाशिक व्रत, ११-पीपघोषवास व्रत, १२. अतिथिसंविभाग व्रत ।

(घ) श्रावक-श्राविका का अहिंसाणुव्रत

पहला व्रत “स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत” अर्थात्—जीवों की हिंसा से विरत होना । संसार में दो प्रकार के जीव हैं, स्थावर और अस्र । जो जीव अपनी इच्छानुसार स्थान बदलने में असमर्थ हैं वे स्थावर कहलाते हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय (पानी), अग्निकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय—ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं । इन जीवों के सिर्फ़ स्पर्श-इन्द्रिय होती है । अतएव इन्हें एकेन्द्रिय जीव भी कहते हैं ।

दुःख-मुक्त के प्रसंग पर जो जीव अपनी इच्छा के अनुसार एक जगह से दूसरी जगह पर आते-जाते हैं, जो चलते-फिरते और बोलते हैं, वे अस्र हैं । इन अस्र जीवों में कोई दो इन्द्रियों वाले, कोई तीन इन्द्रियों वाले, कोई चार इन्द्रियों वाले, कोई पाँच इन्द्रियों वाले होते हैं । संसार के समस्त जीव अस्र और स्थावर विभागों में समाविष्ट हो जाते हैं ।

मुनि दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग करते हैं । परन्तु गृहस्थ ऐसा नहीं कर सकते, अतएव उनके लिए स्थूल हिंसा के त्याग का विधान किया गया है । निरपराध अस्र जीवों की संकल्प पूर्वक की जाने वाली हिंसा को ही गृहस्थ त्यागता है ।

जैन शास्त्रों में हिंसा चार प्रकार की बतलाई गयी है—^१

१. आरम्भी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३. विरोधी हिंसा, ४. संकल्पी हिंसा ।

१. प्रथमव्याख्यानसूत्र अध्यायद्वार

1.
... ..
... ..

2.
... ..
... ..

3.
... ..
... ..

4.
... ..
... ..

5.
... ..
... ..

6.
... ..
... ..

7.
... ..
... ..

8.
... ..
... ..

9.
... ..

(ङ) सातवां भोगोपभोगपरिमाण व्रत—

एक बार भोगने योग्य आहार आदि भोग कहलाते हैं। जिन्हें पुनः पुनः भोगा जा सके, ऐसे वस्त्र, पात्र, मकान आदि उपभोग कहलाते हैं।^१ इन पदार्थों को काम में लाने की मर्यादा बांध लेना “भोगोपभोगपरिमाण व्रत” है। यह व्रत भोजन और कर्म (व्यवसाय) से दो भागों में विभक्त किया गया है। भक्ष्य (मानव के खाने-पीने योग्य) भोजन पदार्थों की मर्यादा करने और अभक्ष्य (मानव के न खाने-पीने योग्य) पदार्थों का त्याग करने का इस व्रत के पहले भाग में विधान है। भोजन (भक्ष्य) पदार्थों की मर्यादा करने से लोलुपता पर विजय प्राप्त होती है तथा अभक्ष्य पदार्थों (मांस, मदिरा आदि) के त्याग से लोलुपता के त्याग के साथ हिंसा का त्याग भी हो जाता है। दूसरे भाग में व्यापार संबन्धी मर्यादा कर लेने से पाप-पूर्ण व्यापारों का त्याग हो जाता है।

इस व्रत को अङ्गीकार करने वाला साधक मदिरा, मांस, शहद, तथा दो घड़ी (४८ मिनट) छाछ में से निकालने के बाद का मक्खन (क्योंकि दो घड़ी के बाद मक्खन में श्रम जीव उत्पन्न हो जाते हैं), पाँच उदुम्बर फल (दड़-शीपल-पिलंगण-कटुमर-गूलर के फल), रात्रिभोजन इत्यादि का त्याग करता है। क्योंकि इन सब में श्रम जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इस लिये उनके भक्षण से मांसाहार का दोष लगता है, जो कि श्रावक के लिये सर्वथा वर्जित है।^२ गार्ग्य यह है कि ऐसे सब प्रकार के पदार्थ, जिनके

१. सङ्घेन भुज्यते यः स भोगोऽन्नस्यगाधिकः ।

पुनः पुनः पुनर्भोग्य उपभोगोऽङ्गनादिकः ॥

(योगशास्त्र प्र० ३ श्लो० ५) ।

२. सद्यं नागं नयनीतं सयुदुम्बरानंचरम् ।

अनल्पकालमजानक्यं रात्रौ च भोजनम् ॥ ६ ॥

आम गोशुभं मन्मथं द्विदलं पुणितोदनम् ।

दध्नर्द्विदलार्थं कुशिनान्नं च वर्जयेत् ॥ ७ ॥

(श्र० हेमचन्द्रवृत्त योग शास्त्र प्र० ३) ।

निर्माण करवाये जाने पर भाग्य के अर्थ प्राप्त हो
सकते हैं—

१. अशुभ भाग्य—इसके लिए पुण्य निर्माण करना ।
२. अशुभ भाग्य—इसके लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि का पूजन करना ।
३. अशुभ भाग्य—इसके लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर आदि का निर्माण करके पुण्य का देना, भक्तियों के आदि भाग्य ।
४. भाग्य-दोष—प्राप्त करना ।

इस प्रकार अशुभ भाग्य के लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि का पूजन नही करना । कामाग्नि का निर्माण नही करना । अशुभ भाग्य के लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि का पूजन नही करना । शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि का निर्माण नही करना, इसके आधिकारिक विक्रय में भाग नही लेना और भाग्य-भाग्य के योग्य पदार्थों में अधिक आशय नही होना ।

इस प्रकार शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि योग्य के लिए उपयुक्त वस्तुओं का प्राप्ति करने हेतु साधना आवश्यक

- (क) पाँच उद्वर फलों के दोष—
उद्वर-वट-अशुभ-भाकोद्वर-शार्ङ्गनाम् ।
विष्णुस्य च नास्नीयात्फलं क्रमिकुञ्जाकुञ्जम् ॥ ४२ ॥
- (ख) रात्रिभोजन के दोष—
घोरान्धकारः स्वार्थः पतन्तो यत्र जन्तवः ।
नैव भोज्ये निरीदयन्तो तत्र भूजित को निशि ? ॥ ४९ ॥
- (ग) गोरत फच्चे से मिश्रित दूध के दोष—
आमगौरममं पुवतद्विद्वन्नादिपु जन्तवः ।
दृष्टाः केवलभिः सूक्ष्मास्तस्मात्तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥
- (घ) जन्तु मिश्रित पुष्प-फल में दोष—
जन्तुमिश्रं फलं पुष्पं पत्रं चान्यदपि त्यजेत् ।
संधानमपि संभवतं जिनधर्मपरायणः ॥ ७२ ॥
(आचार्य हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र प्रकाश ३) ।

संज्ञा को है । इसी प्रकार है कि जो व्यक्ति किसी व्यक्ति को जानता है वह उसे जानता है । यह भी सत्य है कि जो व्यक्ति किसी व्यक्ति को जानता है वह उसे जानता है ।

इस प्रकार का प्रमाण है कि जो व्यक्ति किसी व्यक्ति को जानता है वह उसे जानता है । यह भी सत्य है कि जो व्यक्ति किसी व्यक्ति को जानता है वह उसे जानता है ।



निर्ग्रन्थ श्रमण [जैन साधु-साध्वी] का आचार

जैनागमों में त्वागमय जीवन अद्भुतकार करने वाले व्यक्ति की योग्यता का विस्तृत वर्णन किया है। आयु का कोई प्रतिबन्ध न होने पर भी जिसे शुभ तत्त्व-दृष्टि प्राप्त हो चुकी है, जिगने आत्मा-अनात्मा के स्वरूप को समझ लिया है, जो भोग-रोग और इन्द्रियों के विषयों को विष ममज्ञ चुका है तथा जिसके मानस सर में वैराग्य की ऊर्मियाँ लहराने लगी हैं वही त्यागी निर्ग्रन्थ बनने के योग्य है। पूर्ण विरक्त होकर शरीर मन्वन्धी ममत्व का भी त्याग करके जो आत्म-आराधना में नलम्न रहना चाहता है वह जैन मुनिधर्म अर्थात् जैन दीक्षा ग्रहण करता है।

उसे घर-बार, धन-दौलत, स्त्री-परिवार, माता-पिता, खेत-जमीन आदि पदार्थों का त्याग करना पड़ता है। सच्चा श्रमण वही है जो अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। वह अपनी पीड़ा को वरदान मान कर तटस्थ भाव से सहन कर जाता है, मगर पर-पीड़ा उसके लिये असह्य होती है। जैन साधु वह नौका है जो स्वयं तैरती है तथा दूसरों को भी तारती है।

भगवान् महावीर कहते हैं—साधुओ ! श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये लाघव-कम-से-कम साधनों से निर्वाह करना, निरीहता-निष्काम वृत्ति, अमूर्छा-अनासक्ति, अगृद्धि, अप्रतिबद्धता, शान्ति, नम्रता, सरलता निर्लोभता ही प्रशस्त है।

जैन भिक्षु के लिये पाँच महाव्रत अनिवार्य हैं। उन्हें रात्रिभोजन का भी सर्वथा त्याग होता है। इन महाव्रतों का भलीभाँति पालन किये बिना कोई साधु नहीं कहला सकता। महाव्रत इस प्रकार हैं :—

संभव नहीं है। रात्रि को भोजन आदि में वस जीवों का पड़ जाना प्रायः संभव होने से हिंसा एवं मांसाहार के दोष से प्रायः बचा नहीं जा सकता। इस प्रकार सब दोषों को देखकर ही ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा है कि "निर्ग्रन्थ मुनि रात्रि को किसी भी प्रकार से भोजन न करे।"

अन्नादि चारों ही प्रकार के आहार (१. अशन—वह खुराक जिससे भूत मिटे, २. पान—वह आहार जिससे प्यास आदि मिटे, ३. साद्य—वह आहार जिससे थोड़ी तृप्ति हो, जैसे फलादि, ४. स्वाद्य—इलायची सुपारी आदि) का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं दूसरे दिन के लिये भी रात्रि में साद्य सामग्री का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः अहिंसा महाव्रत धारी श्रमण रात्रिभोजन का सर्वथा त्यागी होता है।

२. सत्य महाव्रत—मन से सत्य सोचना, वाणी से सत्य बोलना, और काय से सत्य का आचरण करना तथा सूक्ष्म असत्य का भी प्रयोग न करना, सत्य महाव्रत है।

जैन गायु मन-वचन तथा काया से कदापि असत्य का सेवन नहीं करता। उने मौन रहना प्रियतर प्रनीत होता है, फिर भी प्रयोजन होने पर परिमित, हितकर, मधुर और निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है। वह बिना मोचे विचारे नहीं बोलता। हिंसा को उत्तेजन देने वाला वचन मुँह से नहीं निकालता। हेमी, मजाक आदि बातों से, जिनके कारण अनन्य भाषण की गंवावना रहती है, उगने दूर रहना है।

३. अचौर्य महाव्रत—मुनि गंगार की कोई भी वस्तु, उगके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करना, चाहे वह शिष्यादि हो, चाहे निर्जीव प्राणीदि हो। दान माग्न करने के लिये विनाश जैसा कुछ वस्तु भी माग्निक की आज्ञा बिना नहीं लेना।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत—जैन मुनि काम वृत्ति और वागना का नियमन करने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस दुर्भर महाव्रत का पालन करने के लिये अनेक नियमों का बर्तव्यता से पालन करना पड़ता है। उन में से कुछ इस प्रकार हैं—

आत्म-साधक बनाने के प्रयत्न में संलग्न रहता है। सर्दों-गर्मी, भूत-प्यास, वर्षा-शूष की भी परवाह न करके वह गतत ध्यान, तप तथा प्राणियों के उपाकार के लिये पर्यटक बना रहता है। सब प्रकार के परिपह और उपसर्गों को सहर्ष सहन करते हुए भी अपने जीवनलक्ष्य का त्याग नहीं करता। किसी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राणी की भी हिंसा उससे न हो जाय इसके लिये वह सदा सावधान रहता है और इस दोष से बचने के लिये वह अपने पाग सदा 'रजोहरण' रखता है तथा सचेत कच्चा, पक्का अथवा दोष वाला ऐसा वनस्पति का आहार भी कभी ग्रहण नहीं करता। वस्तु के निकम्मे भाग को डालने से किसी एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा न हो जाय इसकी पूरी सावधानी रखकर स्थान को देखभाल कर तथा पूंज-प्रमार्जन करके डालता है।

इस प्रकार निर्ग्रथ श्रमण-जैन साधु एकेन्द्रिय से लेकर 'चेन्द्रिय जीव की हिंसा से बचने के लिये सदा जागरूक रहता है।

१. एक ऊनादि नरम वस्तु का गुच्छा, जिससे स्थान साफ करने पर जीवादि की हिंसा का बचाव होता है।

... (faint text) ...

... (faint text) ...

भगवान् महावीर को रोग कर्मों में 'निगण्ड नागपुत्र' के नाम से सम्बोधित किया है। रोगों के 'मूल निगण्ड' नामक कर्म में निगण्डों (जैनों) के मत की कक्षा महाराज मिलती है। उन्हीं के "महानिगण्ड निगण्ड के चतुःशतसंख्येय मूल" नामक ग्रन्थ में वर्णित है कि नागपुत्र में निगण्ड स्वटे-मटे नामक कर्मों करते थे। निगण्ड नागपुत्र (महावीर) मयंज-मयंदर्मी थे। चल्ते हुए, मते मते हुए, मते हुए या मते हुए, हर स्थिति में उनकी जानदृष्टि कायम रहती थी।

भगवान् महावीर का आचार—

भगवान् महावीर पाँच महाव्रतधारी तथा गतिभोजन के मयंथा त्यागी थे। इन व्रतों का स्वल्प जैन धर्म के आचार में कर आये हैं।

भगवान् महावीर दीक्षा (गन्धान) लेने के बाद एक वर्ष तक मात्र एक देवद्वय वस्त्र पहिने रहे, तन्वचनात् मयंथा नग्न रहते थे। हाथों की हथेलियों में मित्रा ग्रहण करते थे। उनके लिये तैयार किये हुए अन्नदि आहार को वे स्वीकार नहीं करते थे और न ही किसी के निमन्त्रण को स्वीकार करते थे। मत्स्य, मांस, मदिरा, मादक पदार्थ, कन्द, मूल आदि अन्नद्वय वस्तुओं को कदापि ग्रहण नहीं करते थे। प्रायः तमस्या तथा ध्यान में ही रहते थे। छः छः मात्र एक निजंज उष्याम (मय प्रकार की नाने-पाने की वस्तुओं का त्याग) करते थे। दाढ़ी मूँछ के बाल उखाड़ कर केवल लोच करते थे। स्नानादि के मयंथा त्यागी थे। छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े किसी भी प्राणी को हिंसा न हो जाय इसके लिये वे बहुत मनकंठा पूर्वक सावधानी रखते थे। वे बड़ी सावधानी से चलते-फिरते, उठते-बैठते थे। पानी को बूझों पर भी नीचे दया रहती थी। मूँछन-से-मूँछन जीव का भी नाश न हो जाय इसके लिये बहुत सावधानी रखते थे। भयावने जंगलों, अटवियों आदि निर्जन जगहों में ध्यानाच्छेद रहते थे। वे स्थान इतने भयंकर होते थे कि यदि कोई सांसारिक मनुष्य वहाँ प्रवेश करता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। जाड़ों में हिंसपात्र

श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्वज्ञान

किसी भी महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य जानने के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है :—(१) उस महापुरुष के जीवन की प्रामाण्य घटनाएँ और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश। बाह्य घटनाओं से आन्तरिक जीवन का यथावत् परिज्ञान नहीं हो सकता। आन्तरिक जीवन को समझने के लिये उनके विचार ही अश्रान्त कसौटी का काम दे सकते हैं। उपदेश, उपदेष्टा के मानस का सार, उनकी आन्तरिक भावनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण है। तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा की जैसी मनोवृत्ति होगी वैसा ही उनका उपदेश होगा। यह कसौटी प्रत्येक मनुष्य की महत्ता का माप करने के लिये उपयोगी हो सकती है; क्योंकि विचारों का मनुष्य के आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये एक को समझे बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता। श्रमण भगवान् महावीर के उपदेशों को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) विचार यानी तत्त्वज्ञान (२) आचार यानी आचरण अथवा चरित्र। यहाँ पर उनके विचार अथवा तत्त्वज्ञान का संक्षिप्त परिचय देंगे। तत्त्वज्ञान पाने के बाद भगवान् ने कहा—(१) यह लोक है, उस विश्व में जीव और जड़ दो पदार्थ हैं, इनके अतिरिक्त और नौगरी मौलिक वस्तु है ही नहीं। इसलिये यह कह सकते हैं कि जीव और जड़ के समूह को ही लोक कहते हैं। (२) प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्मत्व की अपेक्षा में नित्य है और परमाणु की अपेक्षा में अनित्य-अन्तवान् है। (३) लोकाद्यैक असत्य है। (४) जीव और शरीर निन्न हैं। जीव शरीर नहीं शरीर जीव नहीं। (५) जीवात्मा अनादि काल में कर्म में बद्ध है इसलिये वह पुनः पुनः संस्र चारण करती है। (६) जीवात्मा

का आधार मनःकल्पना और अनुमान की भूमिका पर नहीं था, परन्तु उनके प्रवचन में केवलज्ञान द्वारा हाथ में रखे हुए आंखले के समान समस्त विश्व के स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर लोकालोक के मूल तत्त्व-भूत द्रव्य-गुण-पर्याय के त्रिकालवर्ती भावों का दिग्दर्शन था । अथवा आधुनिक परिभाषा में कहा जाए तो उसमें विराट विश्व या अखिल ब्रह्माण्ड (Whole Cosmos) की विधि विहित घटनाएँ (Natural phenomena), उनके द्वारा होती हुई व्यवस्था (Organisation), विधि का विधान और नियम (Law and order) का प्रतिपादन तथा प्रकाशन था ।

इस प्रकार गुण को मिथ्या मानना और मूर्खता व नीचता के कारण श्रमियों और मूर्खों में इस तपसा से, तपसा को नीच मानना से और इसके फलस्वरूप पौरुष और पराधीनता और तपसा के कारण परलोक के विनाश तथा प्रयत्न करने से और तपसा के भी से । इस तरह दिया और प्रतिदिया का ऐसा विचार की बात ही जाता है कि ज्योप यथाय के गुण को गत्य ही नश्यत बना देते हैं । दिया के इस भयानक कारण के विचार में महावीर ने अहिंसात्मक में ही समाप्त भर्मा का, समाप्त करनेवालों का और प्राणिमात्र की शान्ति का मूल दिया । यह विचार कर उन्होंने वैराग्य का तथा कायिक और मार्गात्मक दाया में हानि वाली दिया को रोकने के लिये तप और संयम का अत्यन्तव्यक्त किया ।

संयम का सम्बन्ध मुख्यतः मन और वचन के साथ होने के कारण उन्होंने ध्यान और मौन को स्वीकार किया । भगवान् महावीर के माधक-जीवन में संयम और तप यही दो बाने मुख्य हैं और उन्हें मिद्ध करने के लिये उन्होंने साढ़े बारह वर्षों तक जो प्रयत्न किया और उममें जिस तत्परता और अप्रमाद का परिचय दिया वैसा आज तक की तपस्या के इतिहास में किसी व्यक्ति ने दिया हो, वह दिगालाई नहीं देना । गौतम बुद्ध आदि ने महावीर के तप को देह-दुःख और देहदमन कह कर उसकी अवहेलना की है । परन्तु यदि वे सत्य तथा न्याय के लिये भगवान् महावीर के जीवन पर तटस्थता से विचार करते तो उन्हें यह मालूम हुए बिना कदापि न रहता कि भगवान् महावीर का तप शुष्क देहदमन नहीं था । वे संयम और तप दोनों पर समान रूप से जोर देते थे । वे जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहनशीलता कम हुई तो दूसरों की सुखमुविधा की आहुति देकर अपनी सुखमुविधा बढ़ाने की लालसा बढ़ेगी और उसका फल यह होगा कि संयम न रह पायेगा । इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी पराधीन प्राणी पर अनिच्छा पूर्वक आ पड़े देह कष्ट की तरह निरर्थक है ।

ज्यों-ज्यों संयम और तप की उत्कटता से महावीर अहिंसात्मक के

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...

... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...

... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...

... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...

... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...
 ... (faint text) ...

111

112

113

114

115

116

117

118

119

120

121

122

123

124

125

126

127

128

129

130

131

132

133

134

135

136

137

138

139

140

141

142

143

144

145

146

147

148

149

150

151

152

153

154

155

156

157

158

159

160

161

162

163

164

165

166

167

168

169

170

171

172

173

174

175

176

177

178

179

180

181

182

183

184

185

186

187

188

189

190

191

192

193

194

195

196

197

198

199

200

201

202

203

204

205

206

207

208

209

210

211

212

213

214

215

216

217

218

219

220

221

222

223

224

225

226

227

228

229

230

231

232

233

234

235

236

237

238

239

240

241

242

243

244

245

246

247

248

249

250

251

252

253

254

255

256

257

258

259

260

261

262

263

264

265

266

267

268

269

270

271

272

273

274

275

276

277

278

279

280

281

282

283

284

285

286

287

288

289

290

291

292

293

294

295

296

297

298

299

300

301

302

303

304

305

306

307

308

309

310

311

312

313

314

315

316

317

318

319

320

321

322

323

324

325

326

327

328

329

330

331

332

333

334

335

336

337

338

339

340

341

342

343

344

345

346

347

348

349

350

351

352

353

354

355

356

357

358

359

360

361

362

363

364

365

366

367

368

369

370

371

372

373

374

375

376

377

378

379

380

381

382

383

384

385

386

387

388

389

390

391

392

393

394

395

396

397

398

399

400

401

402

403

404

405

406

407

408

409

410

411

412

413

414

415

416

417

418

419

420

421

422

423

424

425

426

427

428

429

430

431

432

433

434

435

436

437

438

439

440

441

442

443

444

445

446

447

448

449

450

451

452

453

454

455

456

457

458

459

460

461

462

463

464

465

466

467

468

469

470

471

472

473

474

475

476

477

478

479

480

481

482

483

484

485

486

487

488

489

490

491

492

493

494

495

496

497

498

499

500

சென்னை மாநகராட்சி கட்டிடத் துறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை

சென்னை மாநகராட்சி கட்டிடத் துறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை

மாநகராட்சி கட்டிடத் துறைக்குரிய கட்டிடப் பணிகளை மேற்கொள்ளும் முறை



भगवान् वादे—“मोम ! यह वपन पूरे जल से अणुओं का व्यापारी था। स्वयं भी माग-अणुः आदि भक्षण करता था इसका नाम निद्राण या और अणुओं के व्यापार के कारण यह निद्राण अणुः अणुओं के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। उगने इस काम के लिए नोकर रणे दृष्ट थे, जो मागुओं मुर्गी, कवचरी आदि के अणुः गरीद कर खाने और बाजार में जाकर बेचना करने थे। वह स्वयं भी अणुओं का भूना, नलना और गाना था। शगव पीकर नशे में चूर रहता था। भगवान् वादे-हे मोमम ! यह डतना पापी था जिनके फलस्वरूप अपने जीवन के दिन पूरे कर वह नीमरी नरक में जाकर पैदा हुआ। वहाँ दारुण दुःख भोग कर यहाँ विजय चौर के घर जन्मा है। इस जन्म में भी अपने किये का फल भोग रहा है।

इन उपयुक्त उद्धरणों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है।

इससे स्पष्ट है कि श्रमण भगवान् महावीर ने अपने इन विचारों को स्वयं अपने आचरण में उतारा और फिर मानव समाज को प्राणी मात्र की अहिंसा का अपनी वाणी और करणी द्वारा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया। इसी के परिणाम स्वरूप आज भी जैन अहिंसा विश्व में अलौकिक स्थान रखती है।

जैन मांसाहार से सर्वथा अलिप्त

इस उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे । उनके आचार और विचार यहाँ तक पवित्र थे कि जत्र वे अजीव पदार्थों का भी इस्तेमाल (उपयोग) करते थे तो इस बात की पूरी मावधानी रखते थे—“मेरे द्वारा किसी छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट न पहुँचे ।”

इस विश्वविभूति ने जगत के प्राणियों को जिस अहिंसा के महान् पवित्र मिद्धान्त का उपदेश दिया था उसका आचरण उनके रोम-रोम में था । अर्थात् जो कुछ वे जगत के प्राणियों को आचरण करने के लिये उपदेश देते थे उसको वे स्वयं भी पालन करते थे । उनके रोम-रोम और शब्द-शब्द ने विश्व के प्रत्येक प्राणी के प्रति वात्मल्य भाव प्रगट होता था । उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद सर्वप्रथम यही उपदेश दिया था—“मा हण-मा हण (मत मारो-मत मारो)” अर्थात् किसी भी प्राणी को हिंसा मत करो और इसी उपदेश के अनुसार ही जो उनके धर्म-मार्ग को स्वीकार करना था, उसे वे सर्वप्रथम जीव-हिंसा का त्याग रूप “प्राणति-पान विरमण वत” धारण करते थे । फिर वह चाहे श्रमण हो अथवा श्रावक । इस का विवेचन हम पहले कर आये हैं ।

श्रमण भगवान् महावीर की अहिंसा के विषय में भारत के महान् धर्मशास्त्री सर अण्णाजी कृष्णा स्वामी अय्यर ने एक तार्किक दलील दी थी । उन्होंने कहा था कि मैं भारत शास्त्र का अनुयायी होने से दार्शनिक सन्देहों से विशेष अध्ययन का लाभ नहीं





बौद्ध-जैन संवाद में मांसाहार निषेध

जैनागम मूत्रकृतांग के दूसरे श्रुत स्कन्ध के छोटे अध्यायन में एक प्रसंग आता है जो इस प्रकार है:—

श्रम भगवान् महावीर का चतुर्मास राजगृह में था। चतुर्मास के बाद भी भगवान् राजगृह में धर्मप्रचारार्थ ठहरे। उस सतत प्रचार का धारणांत फट हुआ।

एक बार भगवान् के शिष्य आर्द्रकमुनि भगवान् को वन्दन करने के लिये सुगन्धीय चैत्य में जा रहे थे। रास्ते में उनका शालयमुनि के भिक्षा ने इस प्रकार वार्तालाप हुआ। उस वार्तालाप में जीवहिंसा और मांसाहार सम्बन्धी जैना का क्या सिद्धान्त है, इसका भी खुलासा आर्द्रकमुनि ने किया है जो इस प्रकार है:—निर्घ्रिय आर्द्रकमुनि ने शालयमुनि के भिक्षा से कहा कि:—

द्वितीय खण्ड

विषय-सूची

महाराष्ट्र शासन, न्याय विभाग
मुंबई न्यायालय, न्यायिक सहायक

द्वे कृष्णान्दण्डजरीरे उपस्कृते, न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यदस्ति
नद्वयुते परिपातितं मार्जारविधानस्य वायोनिवृत्तिकारकं कुक्कुडमांसकं
-जीवतूरकटाहमित्यर्थः, तदाहर तेन नः प्रयोजनमिति ।”

(आषाढ सू० १११)

अर्थात्—“तुम नगर में जाओ, खैनी नाम की मृत्पति की भार्या
ने गहूँ दिण्, दो कृष्णाण्ड फल (पेठें) गन्तार करके तैयार किये हैं,
उसका प्रयोजन नही, परन्तु उसके घर में मार्जार नामक वायु की निवृत्ति
करने का यह विजोरे फल ही पृथक् दे, बट्ट के आश्रा। उसका मुझे प्रयोजन
है । (आषाढ सूत्र नं० १११)

इस वाक्य का अर्थ से यह बात स्पष्ट है कि आषाढ जी सूत्र में जो
शब्दों का अर्थ श्रीऋषयोर्यदिने में स्पष्ट रूप से बतलानिपत्त किया है
उसके ही अर्थ का अर्थ रूप में उक्त मान्य था ।



जो देवचंद्र लालभाई पुस्तकालय फंड गूरत में प्रकाशित हो चुका है। उसके प्रस्ताव ८ पृष्ठ २८२, २८३ में वर्तमान चर्चास्पद विषय पर प्रकाश डालता हुआ वर्णन है। वहाँ सिंह अणभार की प्रार्थना में कल्प्य ओषधि स्वीकार करने के लिए भगवान् महावीर सम्मत् होने पर भी "अपने निमित्त में नैयार की हुई ओषध नहीं कल्पनी," ऐसा माधुगामाचारी-मर्यादा को अपने आचरण में सूचित करते हैं।

“जइ एवं ता इहेव नयरे रेवईए गाहावइणीए समीवं वच्चाहि। ताए य मम निमित्तं जं पुत्र ओषहं उववत्तडियं तं परिहरिऊण इयरं अप्पणी निमित्तं निप्फाइवं आणेहि त्ति।”

भावार्थ—[हे सिंह !] यदि ऐसा ही है तो इसी नगर में (मंडिक ग्राम में) रेवनी नाम की गृहपति की पत्नी के गर्भांग जा, उसने मेरे निमित्त जो पत्रले ओषध नैयार की हुई है उसे छोड़ कर दूसरी (ओषध) जो मैंने अपने लिये नैयार की हुई है, वह लाना। भगवान् महावीर के लिये ओषधदान देने में इन भक्त श्रद्धालु की देवगति हुई, इत्यादि वहाँ विस्तृत वर्णन है।

(३)

स्वतंत्र संस्कृत-प्राकृत शब्दानुशासन, कोश, काव्य, साहित्य रचने वाले गुप्रनिद्ध कलिवगल्लमवंज आचार्य श्री हेमचन्द्र ने विक्रम की तरहवी शताब्दी में “त्रिपष्टिशलाकापुष्पचरित्र” महाकाव्य रचा है, जिसके दसवें पर्व में लगभग छ हजार श्लोकप्रमाण भगवान् महावीर का चरित्र है। यह ग्रंथ भावनगर से जैनधर्म प्रचारक मभा ने विक्रम संवत् १०६५ में प्रकाशित किया है। उनके आठवें सर्ग के श्लोक ५४९ में ५५२ में चालू चर्चास्पद विषय पर स्पष्ट प्रकाश डाला है।

मादृशां दुःखशान्त्यं तत् स्वामिन्नादत्स्व भेषजम् ।

स्वामिनं पीडितं द्रष्टुं, नहि क्षणमपि क्षमाः ॥५४९॥

समय के सभी जैन आचार्य इस औपधदान को वनस्पतिपरक ही मानते थे । इस बात की पुष्टि के लिये और भी अनेक उल्लेख मिलते हैं । परन्तु विस्तारभय ने इतने प्रमाण देना ही पर्याप्त हैं । मुझे कि वहना ?

इस विवेचन में यह भी स्पष्ट है कि जैनाचार्य हजारों वर्षों से इन शब्दों का अर्थ 'वनस्पतिपरक' ही करते आये हैं । अतः निगण्ट नायपुत (श्रमण भगवान् महावीर) ने अपने रोग की शान्ति के लिये अथवा अन्य भी किसी समय मांसाहार कदापि ग्रहण नहीं किया । भगवान् महावीर के विषय में भगवती मूत्र के इस एक उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा उल्लेख जैनागमों अथवा जैन साहित्य में नहीं पाया जाता जिससे उनके विषय में मांसाहार करने की आशंका का होना संभव हो । इस चर्चास्पद मूत्रपाठ में भी यह बात स्पष्ट है कि इन शब्दों का अर्थ मांसपरक नहीं किन्तु वनस्पतिपरक है ।

(२)

इस औपधदान पर दिगम्बर जैनों का मत

दिगम्बर जैन मंत्रदाय के विद्वान् भी रेवती (मंडिक ग्राम वाली) के इस औपधदान की मूर्ति-मूर्ति प्रशंसा करते हैं । रेवती ने जो तीर्थंकर नामरुमें उपासन किया, उनका कारण भी यह औपधदान ही था, ऐसा कहते हैं । यह खैर यह है ।

“रेवतीश्राविस्रया श्रौवीरस्य औपधदानं दत्तम् । तेनोपधदान-कारेण तीर्थंकरनामरुमोत्तमजितेन एव औपधदानमपि दान्तव्यम् ।”

(हिंदी जैन साहित्य प्रमाणक कार्यालय बन्धु की जैन चरितमाला नं० ६)

१. अज्ञान के लक्षण, २. अज्ञान के कारण, ३. कर्म का परिणाम, ४. अज्ञान का, ५. अज्ञान का, ६. अज्ञान का, ७. अज्ञान का, ८. अज्ञान का, ९. अज्ञान का, १०. अज्ञान का, ११. अज्ञान का, १२. अज्ञान का, १३. अज्ञान का, १४. अज्ञान का, १५. अज्ञान का, १६. अज्ञान का, १७. अज्ञान का, १८. अज्ञान का, १९. अज्ञान का, २०. अज्ञान का, २१. अज्ञान का, २२. अज्ञान का, २३. अज्ञान का, २४. अज्ञान का, २५. अज्ञान का, २६. अज्ञान का, २७. अज्ञान का, २८. अज्ञान का, २९. अज्ञान का, ३०. अज्ञान का, ३१. अज्ञान का, ३२. अज्ञान का, ३३. अज्ञान का, ३४. अज्ञान का, ३५. अज्ञान का, ३६. अज्ञान का, ३७. अज्ञान का, ३८. अज्ञान का, ३९. अज्ञान का, ४०. अज्ञान का, ४१. अज्ञान का, ४२. अज्ञान का, ४३. अज्ञान का, ४४. अज्ञान का, ४५. अज्ञान का, ४६. अज्ञान का, ४७. अज्ञान का, ४८. अज्ञान का, ४९. अज्ञान का, ५०. अज्ञान का, ५१. अज्ञान का, ५२. अज्ञान का, ५३. अज्ञान का, ५४. अज्ञान का, ५५. अज्ञान का, ५६. अज्ञान का, ५७. अज्ञान का, ५८. अज्ञान का, ५९. अज्ञान का, ६०. अज्ञान का, ६१. अज्ञान का, ६२. अज्ञान का, ६३. अज्ञान का, ६४. अज्ञान का, ६५. अज्ञान का, ६६. अज्ञान का, ६७. अज्ञान का, ६८. अज्ञान का, ६९. अज्ञान का, ७०. अज्ञान का, ७१. अज्ञान का, ७२. अज्ञान का, ७३. अज्ञान का, ७४. अज्ञान का, ७५. अज्ञान का, ७६. अज्ञान का, ७७. अज्ञान का, ७८. अज्ञान का, ७९. अज्ञान का, ८०. अज्ञान का, ८१. अज्ञान का, ८२. अज्ञान का, ८३. अज्ञान का, ८४. अज्ञान का, ८५. अज्ञान का, ८६. अज्ञान का, ८७. अज्ञान का, ८८. अज्ञान का, ८९. अज्ञान का, ९०. अज्ञान का, ९१. अज्ञान का, ९२. अज्ञान का, ९३. अज्ञान का, ९४. अज्ञान का, ९५. अज्ञान का, ९६. अज्ञान का, ९७. अज्ञान का, ९८. अज्ञान का, ९९. अज्ञान का, १००. अज्ञान का

(१) मोहनीय, (२) ज्ञानावरणीय, (३) दर्शनावरणीय, (४) अन्तराय इन चार प्रातिया कर्मों के क्षय करने के कारण १८ दोषों में रहित होते हैं।

“अन्तराया दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगाः,
हासो रत्यरतो नीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥

वैदावृत्य करना (गुणवान को जड़िनाई में से निकालना) । १०-११-१२-१३—अरिहंत, जानार्थ, ननुश्रुत और ज्ञास्य के प्रति शुद्ध निष्ठापूर्वक अनुराग रचना । १४. आवश्यक क्रिया को न छोड़ना (सामायिक आदि छः आवश्यकों का पालन करना) । १५. माध्वमार्ग की प्रभावना (आत्मा के कल्याण के मार्ग को अपने जीवन में उतारना तथा दूसरों को उसका उपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढाना) । १६. प्रवचनवात्सल्य (वीतराग सर्वज्ञ के वचनों पर स्नेह-अनन्य अनुराग होना) ।

इन उपर्युक्त कार्यों में से एक अथवा अधिक कार्यों को करने से जीव तीर्थकर पद को प्राप्त करने योग्य कर्म का बन्धन करता है । इस कर्म का नाम है तीर्थकर नामकर्म ।

वीस स्थानकों का वर्णन ज्ञाताधर्म कयांग आदि आगमों में—

“अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-येर-बहुस्सुय-तवस्तीसु ।

वच्छल्लया य तेसि अभिक्खणाणोवओगे य ॥१॥

दंसण विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारे ।

खणलव तवाच्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥२॥

अप्पुव्वणाण गहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।

एएहि कारणेहि तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

(ज्ञाताधर्म कयांग अ० ८ सूत्र ६४)

अर्थात्—१—अरिहंतभक्ति, २—सिद्धभक्ति, ३—प्रवचनभक्ति, ४—स्थविर (आचार्य) भक्ति, ५—बहुश्रुतभक्ति, ६—तपस्वी वत्सलता, ७—निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना, ८—दर्शन (सम्यक्त्व) को शुद्ध रखना, ९—विनय सहित होना, १०—सामायिक आदि छः आवश्यकों का पालन करना, ११—अतिचार रहित शील और व्रतों का पालन करना, १२—संसार को क्षणभंगुर समझना, १३—शक्ति अनुसार तप करना, १४—शक्ति अनुसार त्याग (दान) करना, १५—शक्ति अनुसार चतुर्विध संघ की तथा साधु की समाधि करना, (बैसा करना जिससे वे

को प्राप्त करने के पश्चात् वीस अथवा सोलह भावनाओं में से किसी भी एक-दो अथवा अधिक भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर सकता है । सम्यग्दर्शन के अभाव से मिथ्यादृष्टि अन्य किन्हीं भी भावनाओं को आचरण में लाता हुआ कदापि तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन नहीं कर सकता ।

तीर्थंकर भगवान् का संक्षिप्त आचार तथा विचार जानने के लिए देखें प्रथम खण्ड में स्तम्भ नं० ४ से ७ तक । इन सब स्तम्भों को पढ़ने से पाठक स्वयं जान सकेंगे कि तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी के आचारों तथा विचारों का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट है कि वे कभी भी माँसाहार को ग्रहण नहीं कर सकते थे ।

इस श्रौपथ को सेवन करने वाले, श्रौपथ लाने वाले तथा श्रौपथ बनाने और देने वाली का जीवन परिचय

१—त्रीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीर्थकर भगवान् वर्धमान-महावीर स्वामी ने रक्त-पित्त (पेचिडा) तथा पित्तज्वर की व्याधि को मिटाने के लिए इस श्रौपथ का सेवन किया। २—निर्ग्रथ श्रमण सिंह ने यह श्रौपथ लाकर दी। ३—रेवती श्राविका ने इस श्रौपथ को अपने घरके लिए बनाया और सिंह मुनि को भगवान् महावीर के रोगशमन के लिए प्रदान किया।

१—सर्व प्रथम श्रमण भगवान् महावीर के सम्बन्ध में विचार करते हैं—

भगवान् महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। दोनों श्रमण संप्रदाय के समर्थक थे। फिर भी दोनों के अन्तरको जाने बिना हम उनके आचार-विचार सम्बन्धी किन्ही नतीजे पर नहीं पहुंच सकते।

(क) पहला अन्तर तो यह है कि बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण से लेकर अपना नया मार्ग-धर्मचक्र प्रवर्तन किया, तब तक के छः वर्षों में उस समय प्रचलित भिन्न-भिन्न तपस्वी और योगी संप्रदायों का एक-एक करके स्वीकार-परित्याग किया। अन्त में अपने विचारों के अनुकूल एक नया ही मार्ग स्थापित किया, जबकि महावीर को कुलपरम्परा से जो धर्म-मार्ग प्राप्त था वह उसे लेकर आगे बढ़े और उस धर्म में अपनी साहजिक विशिष्ट ज्ञानदृष्टि और देश व कालकी परिस्थिति के अनुसार सुधार या शुद्धि की। बुद्ध का मार्ग नया धर्म-स्थापन था तो महावीर का मार्ग प्राचीन काल में चले आते हुए जैनधर्म को पुनःसंस्कृत करने का था।

वाच्य होना पड़ा, जिससे उनके जीवन में न तो खान-पान सम्बन्धी संयम ही रहा और न तप ही रहा। जिनके परिणाम स्वरूप वे अहिंसा-तत्त्व से अधिकाधिक दूर होते गये।

परन्तु महावीर का तप शुष्क देहदमन नहीं था। वे जानते थे कि यदि तप के अभाव में महनशीलता कम हुई तो दूसरों की मुष-मुषिधा की आशुति देकर अपनी मुष-मुषिधा बढ़ाने की त्यागसा वड़ेगी और उमका फल यह होगा कि मयम न रह पायेगा। इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी देहकण्ट की तरह निरर्थक है।

(३) ज्यों-ज्यों भगवान् महावीर संयम और तप की उत्कृष्टता में अपने आप को निपारने गये, त्यों-त्यों वे अहिंसान्तर के अधिकाधिक निरुद्ध पढ़ने गये, त्यों-त्यों उनही गम्भीर ज्ञानि बढने लगी और उमका प्रभाव आम-पाम के लोगों पर अपने आप पडने लगा। मानस साम्र के नियम के अनुसार एक व्यक्ति के अन्दर बलवान होने वाली वृत्ति का प्रभाव आम-पाम के लोगों पर ज्ञान-अज्ञान में हुए बिना नहीं रहता। परन्तु बद्ध तप और मयम को त्याग देने के कारण अहिंसा तत्व को पूर्ण रूप से अपने जीवन में उतारने में असमर्थ रहे। उनका अहिंसा तत्व उमका मात्र बन कर रह गया। परन्तु अपने ओर अपने अनुयायियों के आचरण में इसे पूर्ण रूप से न उतार सके। अतः उनका यह अहिंसा निदान थाका होकर रह गया।

क्योंकि उन समय निर्ग्रन्थ परम्परा का बहुत प्राधान्य था । उनके तप और त्याग में जनना आकृष्ट होंगी थी, जिनमें निर्ग्रन्थों के प्रति उनका अधिक झुकाव व बौद्ध धर्मानुयायियों में आचार की शिथिलता को देखाकर वह प्रश्न कर उठती थी कि आप तप को अवहेलना क्यों करते हैं ? तब बुद्ध को अपने शिथिलान्तर को पुष्टि के लिये अपने पक्ष की गफाई भी पेश करनी थी और लोगों को अपने मन्तव्यों की तरफ गोंचना भी था । इस लिये वे निर्ग्रन्थों की आध्यात्मिक तपस्या को केवल काटमात्र और देहदमन बतला कर कड़ी आलोचना करने लगे ।

(ब) भगवान् महावीर ने जीवात्मा को चैतन्यमय स्वतन्त्र तत्त्व माना है । अनादिकाल से यह जीवात्मा कर्मबन्धनों में जकड़ी हुई आवा-गमन के चक्कर में फँसी हुई पुनः-पुनः पूर्व देह त्यागरूप मृत्यु तथा नवीन देह प्राप्तिरूप जन्म धारण करती है । जीवात्मा शाश्वत है, इसमें चेतना रूप ज्ञान-दर्शनमय गुण हैं और कर्मों को क्षय करके शुद्ध पवित्र अवस्था को प्राप्त कर निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सदा के लिये जन्ममरणरहित होकर शुद्ध स्वरूप में परमात्मा बन जाती है । अतः आत्मा, परमात्मा, पाप, पुण्य, परलोक आदि को मानकर जैन दर्शन ने 'आत्मा है, परलोक है, प्राणी अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है', इत्यादि सिद्धान्त स्वीकार किया है । भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञान का परिचय हम प्रथम खण्ड के पाँचवें स्तम्भ में लिख आये हैं । उससे हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि ऐसे विचार वाला व्यक्ति किसी भी प्राणी का मांस भक्षण नहीं कर सकता ।

परन्तु बुद्ध ने क्षण-क्षण परिवर्तनशील मन के परे किसी भी जीवात्मा को नहीं माना । मरने का मतलब है मनका च्युत होना । बौद्ध दर्शन अपने आप को अनात्मवादी और अनौश्वरवादी मानता है । उसका कहना है कि "आत्मा कोई नित्य वस्तु नहीं है परन्तु ग्रास कारणों से स्कंधों (भूत, मन) के ही योग से उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतों की भाँति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है । चित्त, विज्ञान, आत्मा

उनका स्वरूप बननाते ।

संभवतः बाँझों में मृत मांस के प्रचार पाने का यही कारण प्रतीत होता है कि उनके वहाँ आत्मा को स्वतंत्र तत्त्व न मान कर पाँच स्कन्धों का समूह रूप माना है ; जिसमें कि देहावसान के पश्चात् प्राणी के मृत मांस को भक्ष्य मान लिया गया होगा ! जो ही ।

परन्तु जैन तीर्थंकर भगवन्तों ने प्राणियों के मृत कलेवर को भी अर्घ्यदान कौट्याणुओं का पुंज मान कर मज्जीव माना है । और मांसमृत प्राणी के शरीर का हाना है, फिर चाहे वह प्राणी किमी के द्वारा मारा गया हो अथवा अपने आप मरा हो, अतः मांस अमंक्ष्य जीवित कौट्याणुओं का पुंज हाने में उनका भक्षण करने से महान् हिना का दोष लगता है, इस लिये जैन दर्शन ने इसे सर्वथा अभक्ष्य मान कर त्याज्य किया है । क्योंकि जैनदर्शन मानता है कि आत्मा है, परमात्मा है, परलोक है, प्राणी अपने शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है ।

सायण यह है कि श्रमण भगवान महावीर के जीवन और उद्देश का संक्षिप्त रहस्य दो बातों में आजाता है :—आचार में पूर्ण अहिंसा और तत्त्वज्ञान में अनेकान्त, जिसके द्वारा उन्होंने धार्मिक और सामाजिक दृष्टि कर भारत पर महान् उपकार किया है, जो कि भारतवर्ष के मानविक जगत में अब तक उत्तम अहिंसा, नैयम और तप के अनुशासन के रूप में जीवित है ।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध आत्मसाधना के एक ही पथ के दो परिवार हैं । महात्मा बुद्ध अपने पथ में भटक गये और भगवान महावीर उस पथ का पथ ही संकल्पना प्राप्त कर गये ।

२—भगवान महावीर की आज्ञा में शीघ्र जाने वाले का आचार ।

इस शीघ्र जाने वाले की आज्ञा देने वाले श्रमण भगवान महावीर हैं और उनके शीघ्र जाने वाले महात्मा बुद्ध हैं । सायण तपस्वी मूनि श्री गिर है, जो महात्मा बुद्ध के शीघ्र जाने वाले का नाम महात्मा के विरोधी है (यहाँ शीघ्र जाने वाले का अर्थ, शीघ्र जाने है) ; तथा अहिंसा के महात्मा उद्देश्य के महात्मा बुद्ध के शीघ्र जाने वाले हैं । यदि उद्देश्य ही महात्मा बुद्ध का है ।

रणाम-गोत्ते णं कम्मे णिव्वतिते, (१) सेणितेणं, (२) सुपासेणं, (३) उदातिणा (४) पोट्टिलेणं अणगारेणं, (५) वटाउणा, (६) संत्तेणं, (७) सतगेणं, (८) सुलसाए, (९) साविकाते रेवतीते” ।

(ठाणांग सूत्र सू० ६९१)

श्रीअभयदेवमूरिकृत टीका :—

“तथा रेवती भगवत औपघदात्री.....रेवती च बहुमानं कृतार्थमात्मानं गन्यमाना यथायाचितं तत्पात्रे प्रक्षिप्तवती । तेनाप्यानीय तद् भगवतो हस्ते विसृष्टं । भगवतापि वीतरागतयैवोदरकोष्ठे निक्षिप्तं, ततस्तत्क्षणमेव क्षीणो रोगो जातः” (ठाणांग सूत्र पाठ की टीका)

अर्थात्—१—श्रमण भगवान् महावीर की सुलसा, रेवती प्रमुत्त तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट संख्या थी ।

२—उनमें से गृहपति की भार्या रेवती श्राविका ने सिंह अनगार को शुद्ध द्रव्य दान देने से देवायु का बन्ध किया और जन्म-मरण रूप संसार का भी अन्त किया (मोक्ष प्राप्त करेगी)

३—श्रमण भगवान् महावीर के जीवनकाल में उनके तीर्थ में नौ प्राणियों ने तीर्थकर नामगोत्र का बन्ध किया । जिनके नाम हैं—(१) श्रेणिक, (२) सुपाश्वं, (३) उदायी, (४) पोट्टिल अनगार, (५) दृढायु, (६) शंस, (७) शतक, (८) मुलसा तथा (९) श्राविका रेवती ।

इन में से श्राविका रेवती, जो कि (निगण्ठ नायपुत्त) श्रमण भगवान् महावीर को औपघ दान देने वाली थी । उस औपघ दान देने के कारण उसने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया—यानी जिस कर्म के प्रभाव से अगले जन्म में वह तीर्थकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगी । ऐसी रेवती श्राविका ने अपने आप को कृतार्थ मानते हुए सिंह मुनि (अनगार) के द्वारा मांगी हुई औपघ को मुनि के पात्र में डाल दिया । उस मुनि ने भी (वह औपघ) ला कर भगवान् के हाथों में रस दी । श्रमण भगवान् महावीर ने भी वीतरागता पूर्वक उसे ग्याया और उन का रोग मान्त हुआ ।

श्रीमाल, पोरवाल आदि वर्गों की स्थापना की, जो तब से लेकर आज तक कट्टर निरामिषाहारी हैं ।

५--मारवाड़, मेवाड़, गुजरात आदि प्रदेशों में जहाँ पर अनेक गीतार्थ निर्ग्रथों ने जैनधर्म का अनेक शताब्दियों तक प्रचार किया, उनके उपदेशों के प्रभाव से इन सब प्रदेशों की अधिकतर जनता निरामिषाहारी है ।

इस से निःसंकोच स्वीकार करना पड़ता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी (निगंठ नायपुत्र) की अहिंसा में यदि मत्स्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने की आज्ञा होती तो जैनधर्मविलम्बी तथा उन के प्रभाव वाले क्षेत्र में भी आज मत्स्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करने की शिथिलता आये बिना कदापि न रहती ।

वात उन्हें मालूम न होने में जैनों पर ऐसा आक्षेप न किया हो !

परन्तु प्रथम तो यह बात ही अगंभव है कि जैनों के ग्रंथ किमी भी अन्य धर्मावलम्बी ने न देखे-पढ़े हों। वीद्व पिटकों तथा अन्य मंत्रदायों के धर्मग्रंथों से स्पष्ट पता चलता है कि अनेक निर्ग्रन्थ श्रमणों ने जैनधर्म को त्याग कर अन्य मंत्रदायों को अङ्गीकार किया। ऐसी अवस्था में ऐसे लोगों ने जैन धर्म छोड़ने में पहले जैन शास्त्रों का पठन-पाठन, श्रवण आदि अवश्य किया ही होगा और निर्ग्रन्थचर्या का पालन भी किया ही होगा। अतः वे लोग जैन आचार-विचारों से पूर्णरूपेण परिचित थे। जैनधर्म का त्याग करने के बाद जैनधर्म के प्रति उनका अनादर होना भी निश्चित है। ऐसी अवस्था में यदि जैन तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ-श्रमण एवं श्रमणोपासकों के मान-मन्स्यादिभक्षण करने का वर्णन जैनागमों में होता, अथवा वे ऐसा अमर्त्य भक्षण करने होते, तो इसके लिए अन्य धर्मों को स्वीकार करने वाले जैनधर्म के विरोध में अवश्य मांसाहार का आक्षेप करने ।

दूसरी बात यह है कि इन तर्कवादियों की यह बात मान भी ली जाय कि जैनेतर विद्वानों के हाथ में जैन शास्त्र न आने में वे उन शास्त्रों में पूर्णरूपेण अनभिज्ञ रहे, इसलिए वे लोग जैनधर्मियों के मांसाहार करने की आलोचना न कर पाये। इस बात के उत्तर में हमें इनका ही कहना है कि यह बात तो निःसन्देह ही है कि जैनधर्मावलम्बीयों के आचरण में तो सब देशवासी परिचित थे। यदि जैनधर्मावलम्बीयों में किसी भी मनुष्य किसी भी रूप में मांस-मन्स्याहार का प्रवृत्त होना तो वे जैनों पर उसका अवश्य आक्षेप करने ।

६—दूसरे प्रकार प्रतीत अवकाश तर्क तो भी जैनधर्म में अन्य धर्म-तत्त्व जैसे, उन सब तर्क जैन धर्म ही कटे वाकों को आलोचना को शक्ति आक्षेप भी दिये जाते, किन्तु किसी भी धर्म-मंत्रदाय के विद्वानों ने जैनों पर मांसाहार का आक्षेप नहीं किया ।

७—यदि मांसाहार का आक्षेप अवकाश तर्क निर्ग्रन्थ-श्रमण युक्त चरुणिक

तथागत गौतम बुद्ध की निर्ग्रन्थ अवस्था की तपश्चर्या में मांसाहार को ग्रहण न करने का वर्णन ।

हम इस निबन्ध के प्रथम गण्ट के नवमे स्तम्भ में लिख आये हैं कि गौतम बुद्ध ने कुछ काल तक निर्ग्रन्थ अवस्था में रह कर निर्ग्रन्थ परम्परा-मान्य तपश्चर्या को किया था । उगमें बुद्ध ने स्वयं कहा है कि मैं—१—मत्स्य-मांस-सुरा आदि वस्तुएँ नहीं लेता था । २—बँठे हुए स्थान पर किये हुए अन्न को और ३—अपने लिये तैयार किये हुए अन्न को ग्रहण नहीं करता था, इत्यादि । (मज्झिम निकाय महासीहनाद मुत्त)

इससे यह फलित होता है कि १—यदि बुद्ध के समय निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध निर्ग्रन्थचर्या का पालन करते समय के वर्णन में कदापि यह न कहते कि “मैं मत्स्य-मांस-सुरा आदि का सेवन नहीं करता था” । २—क्योंकि बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद तो बुद्ध तथा उनके भिक्षु मांसाहार करते थे, तब जैन आदि अन्य पंथों वाले, जो इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते थे, वे बौद्धों पर इस शिथिलता के लिये आक्षेप भी किया करते थे । यदि निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध अपने वचन के लिये जैनों को उत्तर में यह अवश्य कहते पाये जाते कि तुम भी तो मांसाहार करते हो ? किन्तु ऐसा आक्षेप बौद्ध ग्रंथों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता । ३—यदि निर्ग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का सर्वथा निषेध न होता तो सम्भवतः गौतम बुद्ध निर्ग्रन्थ धर्म को त्याग करने की आवश्यकता प्रतीत न करते । उन्होंने निर्ग्रन्थचर्या की इस कठोरता के पालन करने में अपने-आप को असमर्थ पाया; इसलिये उन्हें इस मार्ग को छोड़े बिना अन्य कोई उपाय



यहाँ पर हमने भगवान् महावीर के रोग, उसके होने के कारण, लक्षण, तथा अपथ्य आदि का विस्तृत स्वरूप वर्णन कर दिया है; जिम का संक्षेप इस प्रकार है ।

गोशालक के तेजोलेश्या छोड़ने पर उस के तीव्र ताप के कारण भगवान् को अश्रोगामी रक्त-पित्त, तथा रक्तप्रतिसार हो जाने के कारण खून की टट्टियाँ लग गयी थीं । पित्तज्वर तथा दाहरोग भी थे, जिनके कारण तीव्र ज्वर तथा शरीर में बहुत अधिक जलन भी थी । ये रोग गरम, स्निग्ध, भारी पदार्थ तथा खट्टे, खारे, कड़वे पदार्थों के सेवन से बढ़ते हैं ।

हम यहाँ पर इस बात का विचार करेंगे कि इस रोग में मांसाहार लाभकारी है अथवा घातक ?

मांस के गुण और दोष—

“स्निग्धं, उष्णं, गुरु, रक्त-पित्तजनकं वातहरं च ।

सर्वमांसं वातघ्नं सि वृष्यं ॥”

अर्थात्—मांस स्निग्ध, गरम, भारी, रक्त-पित्त को पैदा करने वाला तथा वात को दूर करने वाला है । सब प्रकार के मांस वातहर तथा भारी है ।

यदि भगवान् महावीर के रोग का विचार करें तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि मुर्गे का मांस इस रोग को निवारण नहीं कर सकता, क्योंकि मांस इस रोग को उत्पन्न तथा वृद्धि करने वाला है; यह आयुर्वेद शास्त्र का स्पष्ट मत है ।

अतः इस में यही फलित होता है कि भगवान् महावीर पर मांसाहार का दोष लगाना नितान्त अनुचित है ।

इस लिये रेवती आश्रम द्वारा इस औषध दान में जो द्रव्य दिया गया था वह कुकट्ट मांस (मुर्गे का मांस) कदापि नहीं था, किन्तु कोई वनस्पति विशेष थी । वह औषध कीतनी थी इस का विचार हम आगे करेंगे ।

काम में दिखलाई देने हैं। परन्तु कच्चे आम में ये अंग सूक्ष्म अणुओं में होने के कारण अलग-अलग दिखलाई नहीं देते। उन सूक्ष्म केसर आदि का समग्र व्युत्पन्न रूप देना है।

४--मांसादि द्रव्यों के अंग्रेजी कोशकारों के अर्थ

मांस (संस्कृत) - 1--Flesh. स्नायु का समूह।

2--The flesh of fish. मछली का मांस।

3--The fleshy part of a fruit. फल का

मृदा, गिरी अथवा नरम भाग।

(आटेंकृत संस्कृत-अंग्रेजी डीक्शनरी पृ० ७१३)

Flesh अर्थ--मांस उम शब्द का अर्थ निम्न है--

1--The muscular part of animal.

प्राणी का स्नायु।

2--Soft pulpy substance of fruit.

फल का नरम भाग, मृदा।

3--That part of root, fruit etc, which is fit to be eaten.

मूला, फल आदि में जो भाग खाया जा सके, वह भाग।

4--The soft part of a root, fruit etc.

मूला, फल आदि का नरम भाग।

5--The soft part of a root, fruit etc.

मूला, फल आदि का नरम भाग।

6--The soft part of a root, fruit etc.

मूला, फल आदि का नरम भाग।

7--The soft part of a root, fruit etc. (The soft part of a root, fruit etc. is the part which is fit to be eaten.)

8--The soft part of a root, fruit etc. (The soft part of a root, fruit etc. is the part which is fit to be eaten.)

आमिपं पले ॥ १३३० ॥ सुन्दराकाररूपादौ सम्भोगेलो-
लञ्चयोः । (अनेकार्यं)

अर्थ—आमिप—मांग, सुन्दराकार रूप आदि, सम्भोग, लोभ और रिशवत है ।

‘पल’ शब्द का अर्थ आजकल एक तरह का तोल, काल विना और मांग के अर्थ में प्रसिद्ध है । परन्तु पहले इसके निम्न अर्थ गमते जाते थे—

“पलः पलाली धान्यत्वक् तुषो वृसे कडंगराः” ॥ ११८२ ॥
(अभिधानचिन्तामणि)

अर्थात्—पल, पल्ल, धान्य का छिलका, तुष और कडंगर ये भूमे के नाम है ।

‘अज’ नाम में आज बकरा और विष्णु का अर्थ समझा जाता है, किन्तु इसके अर्थ स्वर्णं माक्षिक, धातु, पुराने धान्य, जो उगने की शक्ति नष्ट कर चुके हों, होते हैं । (शालिग्राम औपथ शब्द सागर) ।

ये सब उपर्युक्त उद्धरण देने का आशय यह है कि मांस, गज्जा, अस्त्रि आदि शब्द जिन प्रकार प्राणियों के अंगों के लिये आते हैं उमी प्रकार वनस्पति के अंगों के लिये भी आते हैं । तथा जिन शब्दों का अर्थ हम प्राणी गमजते हैं, उन शब्दों का प्रयोग वनस्पति और पक्षियों आदि मान पदार्थों के लिये भी होना है । ऐसी परिस्थिति में लिखे गये शास्त्रों के विवरणों के अर्थनिर्णय में विद्वानों द्वारा गल्ती होना असंभव नहीं है । यही कारण है कि वेदों, जैनागमों तथा बौद्धपिटकों में आने वाले तत्कालीन व्याख्यानार्थों के अर्थ में आने वाले शब्दों को प्रयोगों तथा परिस्थितियों का विचार किए बिना अर्थ का अनर्थ करके आज कल के कवियत्र विद्वानों ने अनेक प्रकार की विकृतियाँ घुमेड़ दी है ।

अब हम हम शिष्य को लक्ष्मण न करके यहाँ पर कुछ ऐसे शब्दों की शक्ति देते हैं जिन के अर्थ वनस्पति और प्राणी दोनों होते हैं ।

राजपुत्र	राजकुमार	कल्मीगोरा
वराह	मूअर	नागरमोथा
श्वदंष्ट्रा	कुत्ते की दाढ़	गोखरू
विप्र	ब्राह्मण	पीपल का वृक्ष
जटापु	पक्षी विशेष	गुग्गुल
वानरी, मकंटी,	बन्दरी	कॉच के बीज
वानरीबीज, कपि	बन्दर	कॉच के बीज
मांसफल	मांस	बेंगन
कोकिला, कोकिलाक्ष	कोयल, कोयल की आंख	ताल मगाने
हस्तिकर्ण	हाथी का कान	ताल एरंड की जड़
त्वक्	चमड़ी	छिलका
अस्थि	हड्डी	बीज, गूठली
भुजंग	सांप	नागकेसर
तरुणी	जवान स्त्री	गुलाब

७—वर्तमान काल में कुछ प्रचलित शब्द

शब्द	प्राणी वाचक	वनस्पतिवाचक
कुक्कुड़ी-कुक्कुड़	मुर्गी, मुर्गा (पंजाब गुजरात)	भुंटे (उत्तरप्रदेश)
भाजी	मांस (मुलतान-मिथ देस)	रांधा हुआ माक
गल्लगल	गूट्टहार पक्षी	बीजारा, फल विशेष
तरकारी	मांस (उत्तर पंजाब)	साग, सब्जी (राजस्थान)
चील	चील पक्षी (उत्तरप्रदेश)	चील माक की भाजी
गिळहरी	गिळहरी (उत्तरप्रदेश)	माक

प्रथीत - प्र०१) इ भवति । सोम्यस्य का वाच भवति ।
 है नयवा अभवत् । (१०१) इ सोम्यस्य । सोम्यस्य यत्र भवति वा
 है, अभवत् भी है । (प्र०२) इ भवति । इयमेव वा कारण है ? (१०२)
 हे सोम्यस्य । नुम्हार प्राज्ञाय प्रत्याम सा प्रज्ञाय का सोम्यस्य वा है, (१)
 मित्र सोम्यस्य-समानवयस्य (२) और सोम्यस्य । इयमेव वा
 मित्र सोम्यस्य है वह वाच प्रज्ञाय का है, (१) सोम्यस्य दृष्ट्या, (२)
 सोम्यस्य में पला दृष्ट्या, और (३) सोम्यस्य में भेदा दृष्ट्या । ये तीनों प्रकार के
 सोम्यस्य (समानवयस्य) मित्र श्रमण निर्गमों को अभक्ष्य है । जो सोम्यस्य
 सोम्यस्य है, वह दो प्रकार का है : अश्वपरिष्ठा और अश्वपरिष्ठा
 इम मे जो अश्वपरिष्ठा-अग्नि आदि शस्त्र मे निर्गम नरी दृष्ट्या—वह
 श्रमण निर्गमों को अभक्ष्य है । और जो अश्वपरिष्ठा (अग्नि आदि मे
 निर्गम हुआ) है वह दो प्रकार का है : (१) पण्योप-इच्छा करने योग्य,
 निर्दोष (२) अनेपण्योप न इच्छा करने योग्य-मदोष । इम मे जो
 अनेपण्योप है वह श्रमण निर्गमों को अभक्ष्य है । जो एपण्योप मरगो है

धान्य मास । उस में जो अर्य मास है, वह भी दो प्रकार—“स्वर्णमास और रौप्यमास । यानी चांदी का मास, सोने का मास (एक प्रकार के तोलने के घाँट) । ये भी श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । जो धान्य माप (उड़द) हैं, वे भी दो प्रकार के हैं—शस्त्रपरिणत (अग्नि आदि में अचित्त हुए) और अशस्त्रपरिणत (अग्नि आदि में अचित्त नहीं हुए—सजीव) । इत्यादि जैसे धान्य सरसों के लिये कहा वैसा धान्य माप (उड़द) के लिये भी समझ लेना । यावत्—वह इस हेतु से अभक्ष्य भी है ।

यानी—अग्नि आदि में अचित्त उड़द भी दो प्रकार का है—एवणीय और अनेवणीय (साधु के निमित्त आदि में न रांधा हुआ निर्दोष और साधु के निमित्त से रांधा हुआ सदोष) । इस में जो अनेवणीय है वह श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य है । एवणीय उड़द भी दो प्रकार के हैं: याचित (मांगे हुए) अयाचित (न मांगे हुए) । इन में जो अयाचित रांधे हुए उड़द हैं वे श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । और जो याचित रांधे हुए उड़द हैं वे भी दो प्रकार के हैं—मिले हुए (प्राप्त), न मिले हुए (अप्राप्त) । इन में जो नहीं मिले ऐसे रांधे हुए उड़द श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं । और जो रांधे हुए मागने पर प्राप्त हो गये हैं, ऐसे निर्दोष उड़द श्रमण निर्ग्रंथों को भक्ष्य (खाने योग्य) है । हे नोमिल ! इस कारण से ‘मास’ भक्ष्य भी है, अभक्ष्य भी है ।

(प्र०) कुलत्या ते भंते! किं भवत्सेया, अभवत्सेया ? (उ०) सोमिला ! कुलत्या भवत्सेया वि अभवत्सेया वि । (प्र०) से केणट्ठेणं जाव अभवत्सेया वि ? (उ०) से नूणं सोमिला ! तं वंभन्नएसु न्नयेसु दुविहा कुलत्या पन्नत्ता, तं जहा—इत्थि कुलत्या य घन्नकुलत्या य । तत्थ णं जे ते इत्थि कुलत्या ते ति विहा पन्नत्ता, तं जहा-कुलकन्त्या इ वा कुलवहुया ति वा कुलमाउया इ वा, ते णं समणाणं निग्गंथाणं-अभवत्सेया । तत्थ णं जे ते घन्नकुलत्या एवं जहा घन्नसरिसवा, से तेणट्ठेणं जाव अभवत्सेया वि । (भगवती शतक १८ उद्देशा १०)

विद्वत्ता के लिए शोभाप्रद नहीं है किन्तु विद्वत्ता को दूषित करने वाला है।

अब हम यहाँ पर 'विवादास्पद' सूत्रपाठ के वास्तविक अर्थ के लिये विचार कर।

१--भगवतीसूत्र का (विचारणीय) मूल पाठ इस प्रकार है :--

'तत्र णं रेवतीणं गाहावदणीणं मम अट्ठाणं दुव्वे कवीय-सरीरा उवररुट्ठिया तेहिं नो अट्ठो । अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडणं कुवकुडमणं तमाहराहिं । एणं अट्ठो ।

(भगवतीसूत्र, शतक १५)

समर्थ शास्त्रज्ञ नवागीटीकाकार आचार्य अभयदेवमूरि द्वारा की गयीं इस सूत्रपाठ की टीका तथा इस का अर्थ इसी स्तम्भ ११ के विभाग क-ख अंगों में विस्तृत लिख आये हैं; तथा इस अर्थ की पुष्टि में अणु-म-ड में उनके समकालीन तथा निकट भविष्य में हो गये तीन आचार्यों के उद्धरण भी दे आये हैं। अब यहाँ पर इस पाठ के विवादास्पद शब्दों के वास्तविक अर्थ सप्रमाण लिखेंगे।

उन शब्दों के इस स्थान पर संस्कृत अथवा अर्धमागधी शब्दकोश के प्रचलित अर्थ लेना उचित नहीं, क्योंकि यहाँ तो वे शीघ्र के रूप में दम्भेमान्त ('उपरोक्त') किये गये हैं। अतः उनके अर्थ वैदिकीय शब्दकोशों से लेने उचित है। यदि उन शब्दों के अर्थ वनस्पतिपरक मिल जायें और वे दम्भेमान्तों इस श्लोक के विद्वान् के अनुकूल हों तो अक्षय श्रीहारा कर लेने चाहिये। मुझ विद्वानों के लिये यही शोभाप्रद है।

इस पर स्पष्ट कर आये हैं कि प्रायश्चित्त-मान उन श्लोक का विद्वान् कदापि नहीं हो सकता। ईश्वर उच्छेदीय संकल्प भाषा में उपरोक्त श्लोकों की ओर विशेष विचारणीय शब्दों के संस्कृत पर्यायशब्दों शब्दों का प्रालेखन भी प्रस्तुत करने हैं।—

९—कापोती—कृष्ण कापोती, श्वेत कापोती वनस्पतियाँ (सुश्रुत सं०)
कृष्ण कापोती तथा श्वेत कापोती शब्दों से पाठक काली या
श्वेत कबूतरों ही समझेंगे। परन्तु वास्तव में ये शब्द किमर्थ के
बोधक हैं, इसका खुलासा नीचे दिया जाता है :—

“श्वेतकापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या (सुश्रुत संहिता)।

सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनेक्षुरसोपमाम्।

एवंहपरसां चापि कृष्णां कापोतीमादिशेत् ॥

कौशिकीं सरित्तं तीर्त्वा संजयास्तु पूर्वतः।

क्षितिप्रदेशो वाल्मिकेराचितो योजनत्रयम् ॥

विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वाल्मिकमूर्धसु ॥

(कापोती प्राप्तिस्थान-सुश्रुत सं०)

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि कपोत तथा कपोत से बने हुए शब्द
अनेक प्रकार की वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों के बोधक हैं। कपोत के
रंग जैसा हरा सुरमा होने से इसका नाम कपोतांजन कहलाता है। छोटी
इलायची का रंग कपोत के सदृश होने से कपोतवर्णा कहलाती है। इसी
प्रकार पेठे का रंग भी कबूतर के समान ऊपर से हरा होने से कपोत
कहलाता है। अकेले कपोत शब्द के ये अर्थ लिख चुके हैं :—

(१) कपोत = पारापत (एक प्रकार की वनस्पति) (२) पारीस
पीपर, (३) पेठा (कुम्मांड), (४) कबूतर पक्षी।

इनके गुण-दोषों का वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में इस प्रकार है :—

१—पारापत :—

“पारापतं सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत्” (सुश्रुत संहिता)

२—पारीस पीपर :—

“पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ॥५॥”

फलेऽम्लो मधुरो मूलो, कषायः स्वादुः मज्जकः ॥६॥

(भावप्रकाश-वटाचिर्वा)

३—कुम्माण्ड फल, कोला, सफ़ेद कुम्हेड़ा, पेठा :—

ग्राही, गीतल, रक्त-पित्तदोषनाशक। यदि पका हो तो अग्निवर्धक है।

(४) कबूतर पक्षी का मांस:—

“स्निग्धं ऊष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च।

सर्वमांसं दातविध्वंसि वृष्यं ॥

अर्थ— मांस स्निग्ध, गरम, भारी तथा रक्तपित्त के विकारों को पैदा करने वाला है, वात को हरने वाला है। मत्र मांस वातहर और वृष्य है।

यहाँ पर “कबोय” शब्द है चार अर्थों में से तीन अर्थ वनस्पतिपरक हैं तथा एक अर्थ मांसपरक है।

भगवान् महावीर स्वामी को रोग थे:—

(१) रक्तपित्त, (२) पित्तज्वर, (३) दाह, (४) अतिसार।

इन रोग को शान्त करने के लिए इन चारों पदार्थों में से छोटा कुम्भाण्ड (पेठा) फल ही औषधरूप लिया जा सकता था; क्योंकि इन में ने यही औषध इन रोगों को शान्त करने में ममर्थ थी। परापत तथा पारोम पीपर ये दो वनस्पतिपरक औषधियां इस रोग को शान्त नहीं कर सकती थी। मांस तो इस रोग को पैदा करने वाला, बढ़ाने वाला है। अतः गेठ की भाँसी खेतों श्राविका ने भगवान् महावीर स्वामी के रोग के समनार्थ “दो छंटे पेठे के फल ही” संस्कार किये थे, इस में मन्त्रेष्ट को अवकाश नहीं।

प्रख्यान चर्चि तथा टीकाकारों ने भी “दुधे कबोयमरीरा” का अर्थ “दो छंटे पेठे फल” ही लिया है, यह हम पहले लिख आये हैं।

१. “दुधे कबोयमरीरा”—ये तीन शब्द हैं। मरीरा शब्द ‘कबोय’ से लिप्यन्त पुंलिंग वाले शब्द का शोभक है। यदि यह ‘मरीराणि’ (नपुंसक लिङ्ग) शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ पक्षीमरीर पर लागू हो सकता था। परन्तु “नपुंसक शरीर शब्द ही” प्राणी शरीर या मूर्त के अर्थ में आता है, किन्तु शब्दकार को यह भी अर्थात् नहीं था। अतः कबोय मरीरा ‘मरीराणि’ का प्रयोग न करके पुल्लिङ्ग से “मरीरा” शब्द

अर्थात्—लवंग कटु, तीक्ष्ण, लघु, चक्षुष्य, उष्ण, दीपन, पाचक रुचिकर । कफ, पित्त, मल नाश करने वाला । तृष्णा (प्यास), वमन, आध्मानवायु, शूल के दर्द को शीघ्र नाश करने वाला । गांभी, श्वान, क्षय आदि रोगों को शीघ्र दूर करने वाला है ।

वैद्यक ग्रंथ आर्यभिसक्- (शंकर दाजी पदे कृत) पृ० ३५९ में लिखा है कि :—

लवंग लघु, कटुवा, चक्षुष्य, रुचिकर, तीक्ष्ण, पाककाले मयुर, उष्ण, पाचक, अग्निदीपक, स्निग्ध, हृद्य, वृष्य तथा विगद है; तथा वायु, पित्त, कफ, आम, क्षय, त्वामी, शूल, अनाहवायु, श्वास, उचकी, वांति, त्रिप, क्षतक्षय, क्षय, तृष्णा, पीनस, रक्तशोष, आध्मान वायु को नाश करता है ।

आर्यभिसक् फुट नोट पृ० ३५९—में लिखा है :—

लवंग पेट की पीड़ा का नाशक, प्यास बन्द करने वाला, उल्टी तथा वायु आदि को दूर करने के लिये औषध रूप में दी जाती है ।

इन नव उद्धरणों से तथा टिप्पणी में दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है कि "मार्जार" शब्द के वनस्पतिपरक अनेक अर्थ होते हैं । वायु तथा

मार्जार—रक्तचिद्रक वृक्ष, लालचीता पेड़, चटास,
(हिन्दी विश्वकोश)

चिडाल—हरिताल, यष्टी गैरिक, सिन्धूरदावीताक्षयैः समांशकैः ॥
(वाचस्पति बृहत्संस्कृतानिवान)

मार्जार—ताक्ष्यं-भूपाल-मार्जार-शलभाः स्युस्त्रियङ्कवः ॥१२०७॥

मार्जारिजिपि पिशाचः स्वाद् मारीचां याचकद्वित्रे ॥१३३९॥

(नानार्थरत्नमालायां व्यवहरकांडः)

चरालक—Varalaka—cloves carissa carissa carandos

aromatic Spice—लवंग, मुगन्धित मसाला ।

(Sanskrit: English Dictionary by Sir Monier Monier-Williams).

“मुनिपण्णे हिमो घ्राही मोह-वोपत्रयापहः ।

अधिदाही लघु स्वादुः कपायो रुक्षवीपनः ॥

वृष्यो रुच्यो ज्वर-श्वास-मोह-कुण्ड-भ्रमप्रणुत् ॥ (भावप्रकाश)

अर्थ—मुनिपण्णक ठण्डा, दस्त रोकने वाला, मोह तथा विद्वेष का नाशक, दाह को शांत करने वाला, हृत्का स्वादिष्ट, कपायरसवाला, रुक्ष, अग्नि को बढ़ाने वाला, बलकारक, रुचिकर, और ज्वर, श्वास, कुण्ड तथा भ्रम का नाशक है ।

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी कुक्कुट शब्द का प्रयोग वनस्पति के अर्थ में हुआ है । देखिये—

“कुक्कुट—कोशातकी-शतात्रोमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन
गौरो भवति ।” (कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ० ४१५)

अर्थ—कुक्कुट (विपण्णक—चौपत्तिया भाजी), कोशातकी (तुरई), शतावरी इन के मूलों के साथ महीना भर भोजन करने वाला मनुष्य गौर वर्ण हो जाता है ।

३—कुक्कुटः—शाल्मली वृक्षे (सेमल का वृक्ष) (वैद्यक शब्दसिंधु) ।

४—कुक्कुटः—बीजपूरकः (विजोरा, (भगवतीसूत्र टीका) ।

५—कुक्कुटः—(१) कोपण्डे, (२) कुरंडु, (३) सांवरी (निघण्टु रत्नाकर) ।

६—कुक्कुट—घ'स का उल्का, आग की चिगारी, शूद्र और निपादन की वर्णसंस्कार प्रजा (जं० स० प्र० क्र० ४३)

७—कुक्कुटी—कुक्कुटी, पूरणी, रवतकुसुमा, घुणवल्लभी । पूरणी वनस्पति (हंमो निघण्टुसंग्रह)

८—कुक्कुटी—मधुकुक्कुटी=(स्त्री) मातृकुंगवृक्षे जम्बीरभेदे अर्थात्—बीजोरे वृक्ष में से जम्बीर फल (वैद्यक शब्दसिंधु टीका) (राज-वल्लभ)

“अगस्त्या वंगसेनो, मधुशिग्रुमुनिद्रुमः ।

अगस्त्यः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः ।

तत्पयः पीनसश्लेष्मपित्तनक्तान्घ्यनाशनम् ॥”

(मदनपाल निघण्टु)

अर्थ :—अगस्त्य वंगसेन, मधुशिग्रु, मुनिद्रुम इन नामों से पहचाना जाता है । अगस्त्य पित्त और कफ को जीतने वाला है । चतुर्थिक ज्वर को दूर करता है और शीतवीर्य है । इस का स्वरस प्रतिश्याय श्लेष्म राश्यान्घ्य नाशक है ।

“मुनिशिम्बी सरा प्रोक्ता, बुद्धिदा रुचिदा लघुः ।

पाककाले तु मधुरा, तिक्ता चैव स्मृतिप्रदा ॥

त्रिदोषशूलकफहृत्, पाण्डुरोगविपापनुत् ।

श्लेष्म-गुल्महरा प्रोक्ता, सा पयवा रुक्षपित्तला ॥”

(शालिग्राम निघण्टु)

अर्थ—अगस्ति की शिम्बी शारक कही है, बुद्धि देने वाली, भोजन की रुचि उत्पन्न करने वाली, हल्की, पाक काल में मधुर, तीक्ष्ण, स्मरणशक्ति बढ़ाने वाली, त्रिदोष को नाश करने वाली, शूलरोग, कफरोग को हटाने वाली, विष को नाश करने वाली और श्लेष्म गुल्म को हटाने वाली होती है, परन्तु पकी हुई शिम्बी रुक्ष और पित्त करने वाली होती है ।

(२) कुवकुट् अर्थात् मुनिपण्णक (चीपनिया भाजी), मधुकुवकुटी अर्थात् त्रय्यार फल आदि है; इनके गुणदोषों का विवरण इस प्रकार है :—

कुवकुट्. “मुनिपण्णो हिमो घ्रात्री मोहदोषप्रयापहः ।

अविदात्री लघुः स्वादुः कपायो रुक्षदीपनः ॥

बृची रुच्यो ज्वर-श्वाम-मेह कुण्ड-भ्रम प्रणुत् (भायप्रकाश)

अर्थ—मुनिपण्णक (चीपनिया भाजी) घ्रात्री, दमन रोकने वाली, मोह तथा त्रिदोष को नाश करने वाली, दाह को शान्त करने वाली, हल्की, स्मरणशक्ति, कपाय रस वाली, रुक्ष, अग्नि को बढ़ाने वाली, बल तथा रुचि-कारक, ज्वर, श्वाम, मेह, कुण्ड और भ्रम को नाश करने वाली है ।

२—शाल्मली = मेमल वृक्ष

३—मातुङ्ग—बीजोरा (जम्बीर)

४—मुर्गा

(१) यहां “कुक्कुट” का पहला अर्थ—‘मुनिपण्णक’ नामक शाक भाजी है। यह शाक इस रोग में लाभदायक है अवश्य। यदि यहां पर इस शाक की औषधि लेना मान लें तो यहां पर “मज्जार” का अर्थ ‘खटाश’ लेना चाहिये। क्योंकि ‘खटाश’ डाल कर भाजी का शाक बनाया जाता है। भाजी का शाक ‘दही’ डालकर खटाश करने का रिवाज सब जानते हैं। अर्थात् खटाश की जगह ‘दही’ लेने से दस्तों की तथा पेचिस की बीमारी में लाभदायक है अवश्य, परन्तु भगवान् महावीर के रोग के लिये हानिकारक थी। क्योंकि भगवान् को पेचिस तथा दस्तों के साथ दाह और पित्तज्वर भी था। ज्वर में दही हानिकारक है। तथा दूसरी बात यह है कि भगवनीमूत्र में भगवान् महावीर ने सिंह मुनि से इस औषधि के लिये कहा था कि “पहले से तैयार करके जो औषधि रखी है उमे लाना”। सो दही की खटाश डाल कर बनाया हुआ शाक अधिक दिनों तक रख देने से बिगड़ जाता है और खाने लायक नहीं रहता। एवं इस कुक्कुट शब्द के साथ ‘मंसए’ शब्द है। मंसए शब्द का अर्थ है गूदा परन्तु शाक का गूदा नहीं होता। इसलिये यह शब्द शाक भाजी के अर्थ में घटित नहीं हो सकता। इससे फलित होता है कि यह औषधि भगवान् महावीर ने नहीं ली।

(२) दूसरा अर्थ है—‘शाल्मली’ अर्थात् मेमल का वृक्ष होता है। इस वृक्ष का फल होता है तथा इसमें गूदा भी होता है। परन्तु इसका गूदा गर्म होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है। अतः यह अर्थ भी यहां घटित नहीं हो सकता।

(३) तीसरा अर्थ—“बीजोरा फल” है। बीजोरा कई प्रकार का होता है। जैसे गजगज, चिहोतरा, मंगतरा, मोडा, जम्बीर, किव फल इत्यादि। यहां पर बीजोरे से “जम्बीर फल” अभीष्ट है, क्योंकि अन्य बीजोरों की अपेक्षा इस रोग के लिये जम्बीर- बीजोरे का पत्ता हुआ

फल पका कर तैयार किये हैं उनको वो आवश्यकता नहीं है (आधाकर्मोपयुक्त होने से) । पर उनके वहाँ कुछ दिन पहले मार्जार (कबूतर) नामक वनस्पति ने नस्काग्नि (भावना दिये हुए) बीजों से (जम्बीर) फल के गूदे में तैयार किया हुआ औषधीय पाक (गुरञ्जा) पड़ा हुआ है (जो कि उसने अपने घर के लिये बना कर तैयार करके रखा है) उस को आवश्यकता है । उसे ले आओ ।”

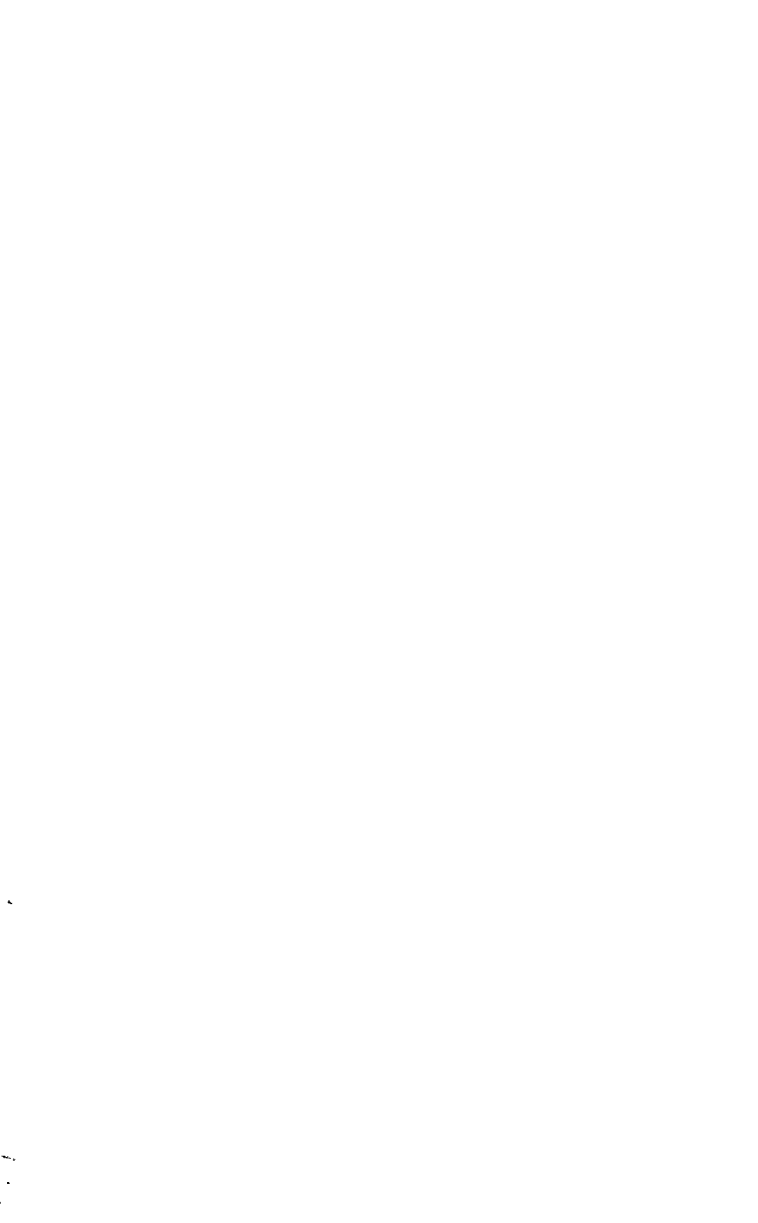
यही अर्थ प्राचीन टीकाकारों तथा चर्चिकारों ने किया है, जो कि उपर्युक्त विवेचन से सर्वथा ठीक प्रमाणित हो जाता है । अतः—

(१) अध्यापक धर्मानन्द कोसाम्बी इम सूत्रपाठ का अर्थ किया गया है कि :—

उस समय महावीर स्वामी ने मिह नामक अपने शिष्य से कहा— “तुम मंडिग गांव में रेवती नामक स्त्री के पास जाओ । उस ने मेरे लिए दो कबूतर पका कर रखे हैं । वे मुझे नहीं चाहियें । तुम उनसे कहना— कल विल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी का मांस तुमने बनाया है, उसे दे दो ।”

पाठक समझ गये होंगे कि कोसाम्बी जी द्वारा स सूत्र पाठ का किया गया अर्थ किनना असंगत, अघटित, अनुचित और भ्रान्तिपूर्ण है । विल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी ऐसी अस्पृश्य तथा घृणित वस्तु को रेवती जैसी वारह व्रत धारिणी उत्कृष्ट श्राविका अपने घर लाकर और उसे पका कर तैयार करे तथा रक्तपित्त, दाह रोग की शान्ति के लिये ऐसी वस्तु का प्रयोग उचित मान लिया जावे, ये सब मान्यताएं अप्रासंगिक, वास्तविकता से दूर तथा कपोलकल्पित जचती हैं ।

(२) तथा मंसए और कडए शब्दों का पुल्लिङ्ग प्रयोग भी प्राण्यंग बनाया हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणों को लेने के लिये भगवान् महावीर स्वामी ने मना किया है (सौमिल्य ब्राह्मण तथा भगवान् महावीर स्वामी के सम्वाद में हमने इम बात को स्पष्ट ज्ञात किया है) ऐसी अवस्था में महा श्रमण भगवान् महावीर स्वयं भी इन्ने ग्रहण नहीं कर सकते थे, क्योंकि कूष्माण्ड पाक उन के लिये बनाया गया था ।



पिष्टान्न आदि से बनाये गये मिष्टान्न भोजन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मांस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं :—

“मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन् सोदति वा ।”

अर्थ—मांस कहो, मानन कहो, मानस कहो ये सब एक ही अर्थ के प्रतिपादक पर्याय हैं और ये उस भोजन के नाम हैं; जो आगन्तुक माननीय महमान के लिये तैयार किया जाता था और वह समझता था कि मेरा बड़ा मान किया गया है।

“मन ज्ञाने” इस धातु से मांस शब्द निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ होता है, बड़े आदमी के सन्मान का साधन।

पुरातत्त्वज्ञाता विद्वानों ने आचार्य यास्क का समय ईसा पूर्व नवम शताब्दी निश्चित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के वैदिक साहित्य में मांस शब्द वनस्पतिनिष्पन्न खाद्य के अर्थ में प्रयुक्त होता था।

इस के बाद धीरे-धीरे मधुपर्क और पिष्टकर्म में प्राण्यंग मांस का प्रयोग होने लगा। “बोधायन गृह्यसूत्र” में जो कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी की कृति मानी जाती है—यह आग्रह किया गया है कि मधुपर्क में प्राण्यंग मांस अवश्य होना चाहिये यदि पशु मांस न मिले तो पिष्टान्न का मांस तैयार कर काम में लिया जाए।

“आरण्येन वा मांसेन ॥५२॥ न त्वेषामांसोऽर्घ्यः स्यात् ॥५३॥
अशक्ती पिष्टान्नं संसिध्येत् ॥५४॥”

अर्थ—(गो के उत्सर्जन कर देने पर अन्य ग्राम्य पशुओं के अभाव में) आरण्य पशु के मांस में अर्घ्य किया जाय, क्योंकि मांस बिना का अर्घ्य होता ही नहीं। यदि आरण्य मांस की प्राप्ति न कर सकें तो पिष्टान्न में उसे (मांस को) तैयार करे।

उपनिषदों में भी मांस तथा आमिष शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु यहाँ सभी जगह में वनस्पति खाद्य पदार्थ का अर्थ प्रतिपादन किया गया है। उपनिषद् वाक्य कौशल में दिया है—

शब्द का "अच्छा भोजन", यह अर्थ भूला जा चुका था। यही कारण है कि उक्त पदार्थों को आमिष का नाम देकर वर्जित बताया गया है। (मा० भो० मी०, क० वि०)

(२) आयुर्वेद, जैन तथा बौद्ध आदि के प्राचीन ग्रंथों में आमिष, मांस, मत्स्य, आस्थिरु आदि शब्दों का प्रयोग वनस्पत्यंगों तथा पक्षवान्तों आदि खाद्य पदार्थों के लिये किया गया मिलता है। इसका विवेचन हम द्वितीय खण्ड में विस्तृत कर^१ आये हैं। तत्पश्चान् धीरे-धीरे इन शब्दों का प्रयोग प्राण्यंगों,

१. पंचामाग भगवतीसूत्र में इस चर्चास्पद सूत्र पाठ के वनस्पतिपरक अर्थ के समान ही आचारांग, दशर्वकालिक आदि के चर्चास्पद सूत्र पाठों के भी वनस्पतिपरक अर्थ है। जैनग्रंथों में प्राण्ये हुए चर्चास्पद शब्दों के प्राण्यंगों के अतिरिक्त निरामिष अर्थात् प्राचीन भारतीय नादिलय ने मत्स्यमाग यथा दिये जाते हैं : ये शब्द अट्टि, अट्टिय, आमिष, कटय, मच्छ, मंस, गज्ज आदि हैं।

अष्टमागनी

संस्कृत

निरामिषार्थ

अस्थि

बीज, गुठली, लकड़ी

स्थल

कोटिलीय अर्थमास्य

पृ० ११८, मुद्रुत मद्रिका,

वृद्धारण्योपनिषद्

वृह० ?

पद्मवना सूत्र

- | | | |
|-----------|----------------|---|
| २. अट्टिय | १. अस्थिक | १. जिसमें बीज न बना हो 'सा अपरिपक्व फल, गुठली वाले बेर, आम आदि फल |
| ३. आमिष | २. आर्थिक आमिष | २. मोक्ष का कारण |
| | | १. आहार, फलादि भोज्य वस्तु |
| | | उत्तराध्ययन ? |
| | | पंचा० ६ |

संज्ञा की के अरु मूल्य सार जो गिट ने निम्न गिष्टान्न तथा फल ग्रंथ के अर्थ में प्रयुक्त होता था, प्रयुक्त होने लगा। ईसा की प्रथम शताब्दी में पूर्व निमित्त जैनाग्रमों तथा प्रकीर्णकों में मूल्य अरु मूल्य सार लक्षण-ग्रन्थ तथा ग्रन्थान्तों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं। इसके बाद के जैन ग्रंथों में मूल्य (२) अंतकर्मों में आये हुए विद्यादास्यद सूत्र पाठों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि अंतकर्मों की रचना का दृष्टिकोण भी जाना जाय ताकि स्पष्टार्थ समझने में सुगमता प्राप्त हो।

५. अंतकर्मों की रचना—कंठक शाखा	उत्तराध्ययन ?
मूल्य	आचारांग २, १, ५
मूल्य	क्षेम कुतूहल
वादपति अनेन	कोटिलीय अर्थशास्त्र अ०
दति मत्स्य ।	२४ पृष्ठ ११७
मत्स्यदिका	
अंतकर्म	पृष्ठ० २, ४, णाया०
	बृहदारण्योपनिषद्
	सुश्रुत महिला,

३. दुःखोत्सादक वस्तु

१. काँटों वाली वृक्ष शाखा
१. मत्स्याकृति के बनाये हुए उड़द की पीठी के पत्रान्न, कोद्वय धान्य के तंडुल, त्रीहि के तंडुल

नशा करने वाले धान्य

अण्ड शंकरा—एक प्रकार की शंकर

१. फलियों का गूदा, फल का गूदा, मेवों का गूदा

समूह अंगवाह्य के नाम से कहे जाते हैं । भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे, उनमें से नवनों भगवान् महावीर की १३५० में ही निर्वाण (मोक्ष) को पा गये थे । त्रिम रात्रि को भगवान् महावीर ने निर्वाण पाया था उसी रात्रि को उनके प्रथम गणधर श्री इन्द्र भूति गौतम को केवल-ज्ञान हो जाने से एक मात्र पाचवें गणधर श्री मुधर्मा स्वामी उस समय भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ (माधु-माध्वी, श्रावक-श्राविका) एवं तीर्थ के नेता (संघ नायक आचार्य) सरक्षक बने । जैन श्रमण ब्राह्मण्यंतर परिग्रह के सर्वथा त्यागी होने से उन्हें निर्ग्रन्थ (निगूठ अथवा निगण्य) के नाम से संबोधित किया जाता था । ये निर्ग्रन्थचर्या के पालन के लिये अत्यावश्यक कतिपय उपकरणों के विनाय आने पाम धन्य कोई भी पदार्थ नहीं रखते थे तथा उस समय केवली, गणधर एवं द्वादशांगी (ग्यारह अंग तथा चौदह पूर्वों) का ज्ञाना गौतार्थ जैन श्रमण संघ विद्यमान होने से भगवान् महावीर की वाणी को लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गयी । भगवान् महावीर के बाद १७० वर्षों तक श्री भद्रबाहु स्वामी तक द्वादशांगी को निर्ग्रन्थ श्रमणों ने बराबर कंठस्थ याद रखा, इसलिये उस ज्ञान में कमी नहीं आयी । श्री स्यूल्भ जो कि आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समकालीन तथा उनके बाद उनके पट्टधर आचार्य नियुक्त हुए वे ग्यारह अंगों तथा दस पूर्वों के अर्थ महित ज्ञाना एवं चार पूर्वों को मूल सूत्र पाठ से जानते थे । उस समय अनेक अन्य निर्ग्रन्थ भी इतने ज्ञान के जाता थे । यह समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी ठहरना है । आर्य मुहूर्त्ती, आर्य महागिरि, महाराजा नम्प्रति के समय हुए (ई० पू० २२०) । फिर ईसा पूर्व हमरी शताब्दी (ई० पू० १७४) में जैन सम्राट कलिगाधिपति गारवंल ने अपनी महा विजय के बाद अपनी राजधानी में एक धर्म सम्मेलन किया । उस समय निर्ग्रन्थ श्रमण बहुत संख्या में पवारे । "यहाँ उन सब ने जैनागमों की वाचना की और उन्हें व्यवस्थित किया ।" ऐसा हाथी मुक्ता के जिलालेग से ज्ञान होता है । इसी प्रकार चीन-चीन में एक-दो शताब्दियों के बाद निर्ग्रन्थ श्रमण किन्हीं न किन्हीं स्थान पर एकत्रित

होता तो अन्य धर्मावलम्बियों के साहित्य में जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी रूप में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। परन्तु यह बड़े गौरव का विषय है कि जैनेतर साहित्य में जैनों पर इस आक्षेप का सर्वथा अभाव है। मेरे एक मित्र जो एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं लेखक, वक्ता तथा धर्मोपदेशक हैं उन्होंने इस विषय के लिये यह तर्क किया—“संभव हीं भक्तता है कि जैन साहित्य जैनेतर विद्वानों के हाथ में न जा पाया हीं, इसलिए हो सकता है कि वे ऐसा आक्षेप जैनों पर न कर पाये हीं” उनकी यह दलील कोई युक्तिमंगत प्रनीत नहीं होती, क्योंकि यह कभी संभव नहीं हो सकता कि जैन साहित्य जैनेतर विद्वानों के हाथ में न गया हो। यदि थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो भी बौद्धिक, पौराणिक, जैन तथा बौद्ध साहित्य का अवलोकन करने से पता चलता है कि अनेक निर्ग्रन्थ श्रमण जैनधर्म का त्याग कर अन्य धर्म सम्प्रदायों में जा मिले। अनेकों ने निर्ग्रन्थ श्रमण की चर्चा का त्याग कर अपने नवीन सम्प्रदायों की स्थापना भी की। जब वे जैन धर्मोपासक थे तब उन्होंने जैनागमों का अभ्यास तो अवश्य ही किया होगा। इसका यह मतलब हुआ कि वे जैनागमों तथा निर्ग्रन्थाचारों विचारों में पूर्णरूपेण परिचित थे, ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है। यदि जैनागमों तथा जैन आचार-विचारों में किंचित मात्र भी माम मच्छकी आदि अभक्ष्यभक्षण का वर्णन अथवा प्रचलन होता तो वे जैनधर्म के प्रतिपक्षी रूप में जैनों पर अवश्य आक्षेप करने पाये जाते।

(७) निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों का आचार जनता के समक्ष था, क्योंकि जैन मुनि आहार आदि गदा गृहस्थों के वहाँ से ही ले लेते थे एवं लेते हैं। यदि वे कदाचित् अनिवार्य अवस्था में भी प्राण्यंग मांस-मद्ययादि का भक्षण करने तो जैनेतर साहित्य में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। ऐसा न होना ही बड़ा सिद्ध करता है कि निर्ग्रन्थ आचार-विचार से प्राण्यंग मांसादि भक्षण की किंचित्मात्र भी अवज्ञा नहीं।

(८) गौतम बुद्ध प्रसिद्धि, मांसाहार से जैनों भक्षण करने की स्थापना

श्रमण भगवान् महावीर के धर्मप्रचार से भी लाखों की संख्या में गृहस्थों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और वे वारह व्रतधारी श्रमणोंपासक बन चुके थे । जिस से उस समय ये निरामिषभोजी भी सर्वत्र विद्यमान थे ।

ऐसी अवस्था में भिक्षा पर निर्भर रहने वाले जैन निग्रंथ श्रमणों को मांस रहित भिक्षा मिलना असंभव मानना कहां तक उचित है ? पाठक स्वयं सोच सकते हैं ।

व्यवित दो कारणों से झूठ बोलता है । अज्ञानवश अथवा राग-द्वेषवश । सो कोशाम्बी जी की उपयुक्त धारणा सत्य से कोसों दूर होने के कारण इन दो कारणों में से किसी एक कारण का शिकार अवश्य हुई है । अधिक क्या लिखें ।

(१७) मनुष्य का उसके विचारों के साथ गहरा सम्बन्ध है । विचारों के अनुसार ही आचार होता है । जो यह मानता है कि आत्मा नहीं है, परलोक नहीं है, परमात्मा नहीं है उसका आचार प्रायः भोग-प्रधान रहता है । जो यह मानता है कि आत्मा है, परलोक है, आत्मा अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख आदि फल को भोगता है, उसका आचार भोगप्रधान न होकर इसके विपरीत त्यागमय होना है । अतः विचारों का मनुष्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ना है । इसलिए किसी के आचार-विचार को जाने बिना उस के विषय में सम्यक् निर्णय नहीं किया जा सकता । महात्मा बुद्ध मृतमार्ग में जीव नहीं मानते थे, किन्तु निर्गन्ध नावपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) सब प्रकार के राग्यंग मांस को तम जीवों का पुंज मानते थे । इसलिए जब हम श्रमण भगवान् महावीर के जीवन पर दृष्टिपान करते हैं तो ज्ञान होना है कि वे दीक्षा लेने से पहले गृहस्थाश्रम में ही मचिन आहार के सब प्रकार से त्यागो हो चुके थे और निग्रंथ श्रमण की दीक्षा लेने के बाद जब वे सर्वत्र-सर्वदमो हो चुके थे तब उन्होंने मोक्षनीय कर्म को सर्वथा नाश कर दिया था । उस समय उन्हें अपने शरीर पर किये-नाश भी मोक्ष नहीं

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तो कषाय अज्ञानादि अकारह दोषों रहित सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे, इमलिये कदाचिन इनके रोग में मांसाहार गुणकारी भी होता तो भी अहिंसा के आदर्श उपदेशक तथा कर्णा के अवतार श्रमण भगवान् महावीर कभी भी ऐसे अभक्ष्य पदार्थ को स्वीकार करें यह बुद्धिगम्य तथा श्रद्धागम्य नहीं है । (५) उन्हें तो अपनी देह पर भी ममता नहीं थी । (६) उन्हें यह भी ज्ञान था कि इस रोग में मुर्गे का मांस घातक है । (७) उन्हें उनके रोग शमन के लिये वनस्पतिनिष्पन्न निर्दोष तथा प्रामुक्त अनुकूल औषधि मुलभ प्राप्य भी थी । ऐसी परिस्थिति में श्रमण भगवान् महावीर का मांसाहार ग्रहण करना कदापि संभव नहीं है ।

निगण्ठ नायगुप्त (श्रमण भगवान् महावीर) अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जाने वाली, प्राणों की घातक, रोग की प्रकृति के प्रतिकूल तथा अभक्ष्य, महापापमूलक वस्तु अपने जिन्य सिद्ध मुनि द्वारा मंगा कर ग्रहण करें, यह बात ममजदार व्यक्ति के गले कदापि नहीं उतर सकती ।

(१९.) रेवती श्राविका जो घनाढ्य गृहस्थ की स्त्री थी, बहुत ही ममजदार और बुद्धिमती थी और वारह व्रत धारिणी भी थी । ऐसी उत्कृष्ट श्राविका ऐसा उच्छिष्ट मांस कैसे रांध सकती थी ? रांध कर वामी क्यों रचे ? फिर भगवान् के लिये दे । ये गव बातें कैसे संभव हो सकती हैं ?

तो स्वयं रांधे वह गाती भी होगी तब वह व्रतधारिणी कैसे हुई ? मांस खाने वाली रेवती ऐसे वामी मांस का आहार दान करने से देवगति प्राप्त करे तथा तीर्थहरनामकर्म उत्तर्जन करे, यह कैसे संभव हो सकता है ? शास्त्रकार तो 'तृतीयं टाशांय आगम' में कहते हैं कि इस मांसदान के प्रभाव से रेवती श्राविका देवगति में गयी और आपामी कीर्तिमें से मनुष्यरत्नम पाकर इस की आत्मा तीर्थहर हो कर त्रिषीण मोक्ष पर का प्राप्त करेगी । अब इससे यह स्पष्ट है कि ममजदारों के वारह व्रत धारिणी श्राविका न तो कदापि प्राप्यंग मांस पका गयी ।

शब्द अनेकार्थक बन जाते हैं तथा अनेकार्थक एकार्थक बन जाते हैं। अनेक शब्दों तथा लिपियों में एक दम परिवर्तन भी हो जाता है। जो शब्द आज किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है वह शब्द कालांतर में सर्वथा भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। सां आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले मगधदेश में बोली जाने वाली भाषा आज की भाषा से मेल कैसे पा सकती है। अतः मुझ एवं निष्पक्ष विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अर्थ करते समय देश, काल, परिस्थिति, आचार, विचार आदि को लक्ष्य में रखते हुए उन के अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। यही उन के लिये शोभाप्रद है। किन्तु प्राचीन काल के एकार्थक शब्दों को अनेकार्थक बना कर अर्थ का अनर्थ करने की कृपा न करें।

(२२) वर्तमान समय में विवादास्पद सूत्रपाठों को निकालने का विचार भी ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों को निकाल देने अथवा उन शब्दों को बदल देने से जैनागमों की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ही समाप्त हो जायगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की मौजूदगी में गणधरों द्वारा संकलित किये गये वे प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद देवद्विगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ़ किये गये थे उस समय इस हजार वर्ष के अन्तर में भाषा, शब्दों, अर्थों के अनेकविध परिवर्तन भी अवश्य हो चुके थे, उस समय लोग प्राचीन अर्थों को भूलने भी लगे थे, बाहर से आने वाली अनेक जातियों के भारत में आकर बसने तथा उन के शासनकाल में उनकी भाषा राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जाने से प्रत्येक भाषा में शब्दों का आदान-प्रदान होने से उस समय की भाषाओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हो चुके थे। आज की हिन्दी, गुजराती, बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का जब हम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी की भाषाओं से मेलान करते हैं तो इनके अन्तर का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले "आम, आमगंध शब्द का अर्थ प्राण्यंग का कच्चा-

